बुन्देलखण्ड की महिलाओं से संबंधित लोकनृत्य

फायनल प्रतिवेदन (द्विवर्षीय)
01.01.2016 से 31.12.2017

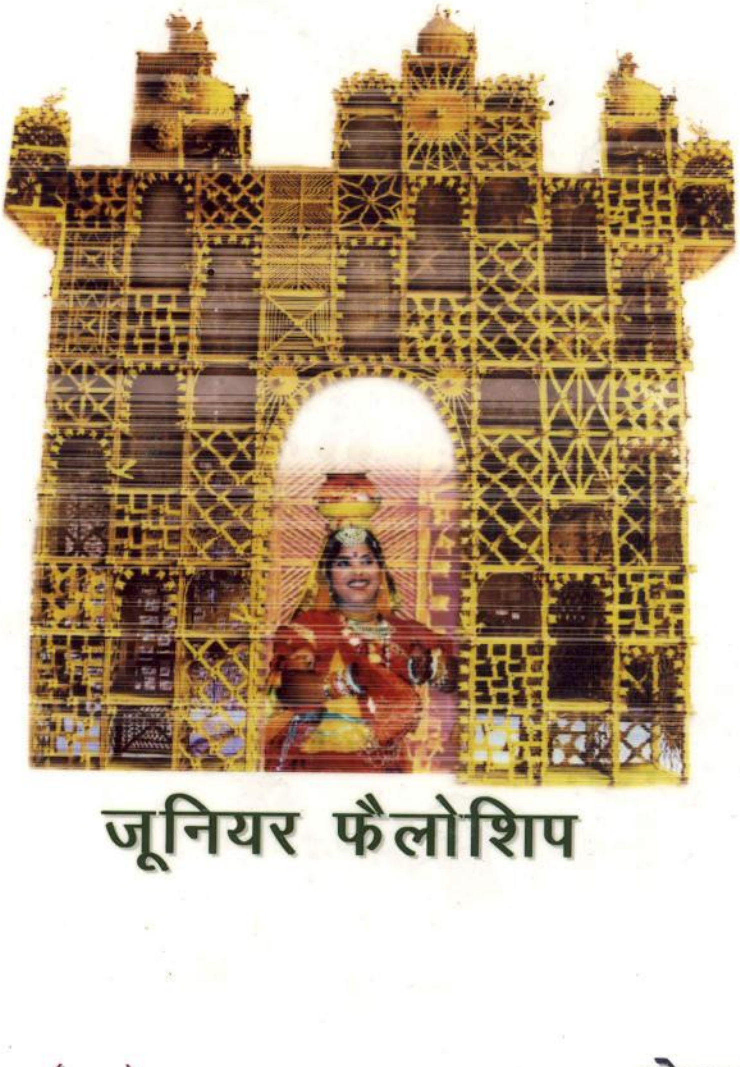

जूनियर फैलोशिप

श्री विष्णु पाठक (गुरु)
पूर्व विभागाध्यक्ष
डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

शोधार्थी
श्रीमति निशा तिवारी
File No. CCRT/JF-3/37/2015
शमशान रोड़ श्रीराम कालोनी,
गोपालगंज, सागर (म.प्र.) 470002

सांस्कृतिक स्त्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली

बुन्देलखण्ड का इतिहास एवं भूगोल

इतचम्बल उत बेतवा, इतनरवदा उत टोंस।
छत्र साल लरन खों, रही न भांकी धोंस।।

बुन्देलखण्ड के सीमांकन के अनेक प्रयत्न हो चुके हैं, उनके विवरण से भी एक स्पष्ट स्वरूप बिम्बित होना स्वाभाविक है। भू–आकारिक सीमांकन नये नहीं हैं, किन्तु भौतिक आधारों पर निर्धारण नवीन है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता एम.एम. अली ने पुराणों के आधार पर विन्ध्यक्षेत्र के तीन जनपदों – विदिशा, दशार्ण एवं करुष की स्थिति का परिचय दिया है। उन्होंने विदिशा का ऊपरी बेतवा (वेत्रवती) के बेसिता से, दशार्ण का घसान और उसकी प्रमुख धाराओं की गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर प्लेटों तक फैले प्रदेश से करुष का सोन–केन नदियों के बीच के समतलीय मैदान से समीकरण किया है। इसी प्रकार त्रिपुरा जनपद जबलपुर के पश्चिम में 10 मील के लगभग ऊपरी नर्मदा की घाटी तथा जबलपुर, मंडला और नरसिंहपुर जिलों के कुछ भागों का प्रदेश माना है।

वस्तुतः यह बुन्देलखण्ड की सीमा–रेखा खींचने का प्रयत्न नहीं है, वरन् पुराने जनपदों की सीमा रेखाएं स्पष्ट करने का प्रमुख साधन हे, जिससे प्राचीन जनपद की स्थिति प्रकाश में जाती है। इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टियों को संतुलित करते हुये बुन्देलखण्ड को कुछ रेखाओं में समेटने का प्रयत्न किया है – ''(विंध्यमेंखला का)'' तीसरा प्रदेश बुन्देलखण्ड है जिसमें बेतवा (वेत्रवती), ढसान (दशार्णा) और केन (शुक्तिमती) के कांठे, नर्मदा की उपरली घाटी और पचमढ़ी से अमरकंटक तक ऋक्ष पर्वत का हिस्सा सम्मिलित है। उसकी पूरवी सीमाटोंस (तमसा) नदी है।

यह सीमांकन पुराणों द्वारा निर्देशित जनपदों की सम्मिलित रेखाओं के बहुत निकट है। वर्तमान भौतिक शोधों के आधार पर बुन्देलखण्ड को एक भौतिक क्षेत्र घोषित किया गया है और उसकी सीमाएं इस प्रकार निर्धारित की गई है। ''वह क्षेत्र जो उतर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य प्लेटों की श्रेणियों, उत्तर–पश्चिम में चम्बल और

दक्षिण–पूर्व में पन्ना, अजयगढ़ श्रेणियों से घिरा हुआ है, बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है। उसमें उत्तर प्रदेश के चार जिले – जालौन, झाँसी, हमीरपुर और बाँदा तथा मध्यप्रदेश के चार जिले – दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर और पन्ना के अलावा उत्तर–पश्चिम में भिंड जिले की लहर और ग्वालियर जिले की भांडेर तहसीलें भी सम्मिलित हैं। वस्तुतः ये सीमा रेखाएं भू–संरचना की दृष्टि से उपयुक्त हैं, किन्तु इतिहास, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से बुन्देलखण्ड बहुत विस्तृत प्रदेश है।

संभवतः इसी वास्तविकता के आधार पर डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्राचीनकाल के जनपद को एक सांस्कृतिक भौगोलिक इकाई की संज्ञा से अभिहित किया है। वैसे नर्मदा और चम्बल घाटी तथा अटवीं की सभ्यता बहुत पुरानी है, किन्तु जनपदीय चेतना का उदय रामायण और महाभारत काल से हो चुका था। महाभारत और जनपद–काल का चेदि इसी प्रकार का जनपद था, जिसका समीकरण पार्जिटर ने वर्तमान बुन्देलखण्ड से किया है। उनके मतानुसार चेदि देश उत्तर में यमुना के दक्षिणी तट से दक्षिण में मालवा के पठार और बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों तक तथा दक्षिण–पूर्व में चित्रकूट से उत्तर–पूर्व में बहने वाली कर्वी नदी से उत्तर–पश्चिम में चम्बल नदी तक प्रसारित प्रदेश का नाम था।

डा. वी.वी. मिराशी के अनुसार मध्यकाल में उसका विस्तार नर्मदा के तट तक हो गया था। अधिकांश इतिहासकारों ने इस सीमांकन को सही माना है।

जनपदों के पतन के बाद सांस्कृतिक आधार निर्बल पड़ता गया और राजनीतिक आधार प्रदान होता गया। राजनीतिक शक्तियों के अनुसार प्रत्येक युग में जनपद की सीमाएं घटती–बढ़ती रहीं। उदाहरण स्वरूप – चंदेलकाल में जेजामुक्ति (जिसका समीकरण बुन्देलखण्ड से सिद्ध हो चुका है) की सीमाएं वर्तमान बुन्देलखण्ड की अपेक्षा अधिक विस्तृत थीं। चन्देलों के राज्य में ऐसे भी क्षेत्र थे जो भिन्न संस्कृति के थे और जिनकी लोकभाषा बुन्देली से भिन्न बघेली, या ब्रजी थी। इसी प्रकार महाराज छत्रसाल बुन्देला की राज्य सीमा को यथावत् जनपदीय सीमा कहना उचित नहीं है।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार पूर्व में टौंस और सोन नदियां अथवा बघेलखण्ड या रीवाराजय है तथा बनारस से निकट बुन्देला नाले तक सिलसिला चला गया है। पश्चिम में वेतवा, सिंध और चम्बल नदियां, विन्ध्याचल श्रेणी तथा मालवा, सिंधिया का ग्वालियर राज्य और भोपाल राज्य है तथा पूर्वी मालवा इसी में आता है। उत्तर में यमुना और गंगा नदियां अथवा इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर तथा बनारस के जिले हैं, दक्षिण में नर्मदा नदी और मालवा है। दीवान जू ने बुन्देलखण्ड की बृहत्तर मूर्ति की रचना की है। पंडित गोरेलाल तिवारी ने लिखा है – ''इस भूभाग के उत्तर में यमुना प्रचंड प्रवाह, पश्चिम में मंद–मंद बहने वाली चम्बल और सिंध नदियां, दक्षिण में नर्मदा नदी और पूर्व में बघेलखण्ड है। वास्तव में इन निर्णयों में ऐतिहासिक, राजनीतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख रहा है।

प्रसिद्ध पुरातत्वविद् कनिंघम ने भी सीमा–निर्धारण का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गंगा और यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश है जो पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चन्देरी और सागर के जिलों सहित विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिल्हरी तक प्रसारित रहा है। लेकिन सीमांकन में चन्देलकालीन मूर्तिकला और स्थापत्य का आधार ही मुख्य प्रतीत होता है। इतिहासकार वी.ए. स्मि ने भी लगभग इसी सीमा को मान्यता दी है। परन्तु उनकी इस मान्यता का आधार भी चन्देलों की राज्य सीमा है, जो बृहत्तर बुन्देलखण्ड की सीमा कही जाती है।

जनपदीय भाषा या बोली जनपद की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना की माध्यम होती है। लोक–संस्कृत गतिशील होती है, इसलिए उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन स्वाभाविक है, किन्तु लोकभाषा जनपद के इतिहास और संस्कृति के स्वरूप की सतत् साक्षी होती है, इसीलिए जनपद की सीमाएं लोकभाषा क्षेत्र से निर्धारित हुआ करती है। सर्वप्रथम विलियम कैरे, ने जो 1793 ई. में भारत आये थे, अपने भाषा–सर्वेक्षण के प्रतिवेदन में 33 भारतीय भाषाओं की सूची में बुन्देलखण्डी पर भी विचार किया था और उसका नमूना भी दिया था। सन् 1838 से 1843 ई. के बीच

मेजर राबर्ट लीच ने बुन्देलखण्ड की हिन्दवी बोली के व्याकरण का निर्माण किया था। उपरान्त सर जार्ज ए. ग्रियर्सन ने बुन्देलखण्डी पर महत्वपूर्ण कार्य किया और प्रत्येक क्षेत्र की बुन्देली भाषा पर विचार करते हुए बुन्देली की सीमाएं निर्धारित कीं। उनके अनुसार बुन्देली भाषा का क्षेत्र बुन्देलखण्ड के राजनीतिक क्षेत्र से मिलता–जुलता नहीं है। वह उत्तर में चम्बल नदी के उस पार आगरा, मैनपुरी, इटावा जिलों के दक्षिणी भागों तक, पश्चिम में चम्बल नदी तक न होकर पूर्वी ग्वालियर तक, दक्षिण में सागर और दमोह तक ही नहीं, वरन् भोपाल के पूर्वी भागों, नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी जिलों तथा बालाघाट और छिन्दवाड़ा के कुछ क्षेत्रों तक फैला हुआ हैं पूर्व में बांदा की भाषा बुन्देली नहीं है।

श्री कृष्णानन्द गुप्त ने इसी सीमांकन का अनुसरण किया है, किन्तु डा. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने ग्रियर्सन द्वारा निर्देशित क्षेत्र का और भी विस्तार कर दिया है। उन्होंने उत्तर में पूरा मुरैना जिला पश्चिम में शिवपुरी और गुना के पूरे जिले तथा दक्षिण में बैतूल का जिला अर्थात् ताप्ती नदी की तटीय सीमा तक का क्षेत्र बुन्देली भाषा क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया है।

इसी प्रकार डा. महेश प्रसाद जायसवाल ने बुन्देली क्षेत्र के अंतर्गत मध्यप्रदश के दुर्ग जिले का कुछ भाग, उत्तर प्रदेश के बांदा जिले का कुछ भाग, महाराष्ट्र के चॉदा, बुल्डाना, भंडारा और अकोला जिलों के भागों को भी समाविष्ट कर लिय है।

भाषाविद् डा. उदय नारायण तिवारी, डा. हरदेव बाहरी आदि ने ग्रियर्सन की सीमाओं को ही दुहराया है। वास्तव में ग्रियर्सन के भाषा–सर्वेक्षण के उपरान्त कोई दूसरा योजनाबद्ध प्रयत्न नहीं किया गया।

भूगोलवेत्ताओं का मत है कि बुन्देलखण्ड की सीमाएं स्पष्ट हैं और भौतिक तथा सांस्कृतिक रूप में निश्चित हैं। वह भारत का एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है, जिसमें न केवल संरचनात्मक एकता, भौम्याकार की समानता एवं जलवायु की समता है, वरन् उसके इतिहास, अर्थव्यवस्था और सामाजिकता का आधार भी एक ही है। बुन्देलखण्ड

राजनीतिक दृष्टि से एक इकाई कम ही रहा, केवल चेदिकाल, चंदेलकाल और छत्रसाल काल में वह एक इकाई के रूप में दिखाई देता है, किन्तु सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से वह प्रदेश अधिकतर इकाई बना रहा है और उसका प्रमुख कारण है–उसके प्राकृतिक अवरोधक। भाषाविद् ग्रियर्सन ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि जाति और संस्कृति के अन्तर या बढ़ा पहाड़ और बड़ी नदी जैसी प्राकृतिक बाधा उपस्थित होने से भाषा सम्बंधी सीमा–रेखाएं पृथक की जा सकती हैं।

बुन्देलखण्ड की दक्षिणी सीमा वे विन्ध्यश्रेणयां बताई गई हैं जो नर्मदा के उत्तर में फैली हुई हैं और जिन्हें भौतिक भूगोल में विन्ध्य पहाड़ी श्रेणियां कहा गया है। भौगोलिक दृष्टि से यह सत्य है, लेकिन सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से इसे उचित नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः सागर प्लेटों के दक्षिण–पूर्व से जनपदीय संस्कृति और भाषा का प्रसार इन विन्ध्यश्रेणियों के दक्षिण में हुआ है। इतिहासकारों ने उसकी दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी तक स्वीकार की है। वैसे विन्ध्यश्रेणियां या नर्मदा नदी दोनों प्राकृतिक अवरोध हैं, किन्तु जनपदीय संस्कृति और भाषा इसे भी पार कर होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिलों तक पहुंच गई है फिर भी वह महादेव (गौंड़वाना हिल्स) और मैकल को पराजित न कर सकी। ये दोनों अवरोधक तो उत्तरी भारत को दक्ष्णि से अलग करते हैं। सर थामस होल्डिच के अनुसार सभी प्राकृतिक तत्वों में एक निश्चित जलविभाजक रेखा, जो एक विशिष्ट पर्वत श्रेणी द्वारा निर्धारित होती है, अधिक स्थाइ और सही होती है। अतएव बुन्देलखण्ड की दक्षिणी सीमा महादेव (गौंड़वाना हिल्स) पर्वत–श्रेणी और दक्षिण–पूर्व में मैकल पर्वत–श्रेणी उचित ठहरती है। इस आधार पर होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर की तहसीलें तथा नरसिंहपुर का पूरा जिला इस प्रदेश के अंतर्गत आता है।

कुछ भाषाविदों ने इन क्षेत्रों के दक्षिण में बैतूल, छिन्दवाड़ा, सिवनी, बालाघाट और मंडला जिलों अथवा उनके कुछ भागों को भी सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी भाषा शुद्ध बुन्देली नहीं है और न ही उनकी संस्कृति बुन्देलखण्ड से मेल खाती है। इतना अवश्य है कि बुन्देली संस्कृति और भाषा का यत्किंचित प्रभाव उन पर

पड़ा है। ऊँचाई पर स्थित होने के कारण वे पृथक हो गये हैं। महादेव–मैकल पर्वत–श्रेणियां उन्हें कई स्थलों पर अलग करती हैं और अवरोध सिद्ध हुई हैं।

बुन्देलखण्ड के पूर्व में मैकल पर्वत–श्रेणियां भानरेर रेणियां, कैमूर श्रेणियां और निचली केन नदी है। दक्षिण–पूर्व में मैकल पर्वत है, इस कारण नरसिंपुर जिले के पूर्व में स्थित जबलपुर जिले के दक्षिण–पश्चिमी समतल भाग बुन्देलखण्ड के अंतर्गत आ गये हैं। इस प्रकार जबलपुर जिले की पाटन और जबलपुर तहसीलों का दक्षिणी–पश्चिमी भाग बुन्देलखण्ड में सम्मिलित हो जाता है। उनकी भाषा और संस्कृति भी बघोलखण्ड की अपेक्षा बुन्देलखण्ड के अधिक निकट है। किन्तु दमोह पठार के दक्षिण–पूर्व में स्थित भानरेर रेंज पाटन और जबलपुर तहसीलों के उत्तरी और उत्तर–पूर्वी भागों को बुन्देलखण्ड से विलग कर देती है। भानरेर श्रेणियों के उत्तर–पूर्व में कैमूर श्रेणियां स्थित हैं, जिनके पश्चिम में स्थित पन्ना बुन्देलखण्ड के अंतर्गत है और पूर्व में बघेलखण्ड है। पन्ना जिले की तहसील पवई और पन्ना के पूर्व संकरी पट्टी में बुन्देली भाषा और संस्कृति का प्रसार है। टोंस और सोन नदियों के उद्गम का भूभाग दक्षिण–पश्चिम की उस संस्कृति से अधिक प्रभावित है। जो कि बुन्देलखण्ड से मिलती–जुलती है।

पन्ना जिले के उत्तर में पन्ना–अजयगढ़ की पहाड़ियों का सिलसिला चित्रकूट तक चला गया है। इसलिए बांदा जिले का वह भाग जो छतरपुर जिले के उत्तर–पूर्वी कोने और पन्ना जिले के उत्तरी कोने से बिलकुल सटा हुआ है और जो उत्तर में गौरिहार (जिला छतरपुर) से लेकर चित्रकूट (बांदा) तक पहाड़ी क्षेत्र की एक सीमारेखा बनाता है तथा जिसके उत्तर से बांदा का मैदानी भाग प्रारम्भ हो जाता है, बुन्देलखण्ड के अंतर्गत आता है। बांदा जिले का शेष मैदानी भाग उससे बाहर पड़ जाता है। इस तरह बुन्देलखण्ड की उत्तर–पूर्वी सीमा निचली केन बनाती है।

भैंस बंधी हो ओरछा, पडा होशंगाबाद।
लहवारे सागरे, चपिया रेवा पार।।

बुन्देलखण्ड की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

बुन्देलखण्ड अपनी भौगोलिक संरचना के कारण देश की 'हृदय स्थली' कहलाता है। देश के इस मध्यीय भू–भाग की समान संस्कृति है। क्षेत्र की यही भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टता उसे देश के अन्य भू–भागों से पृथक करती हुई यहॉ के निवासियों को भाषा, कला, साहित्य और संस्कृति के एक सूत्र में आबद्ध करती है।

बुन्देला शासकों के समय बुन्देलखण्ड की शक्ति चरमोत्कर्ष पर थी अतएव इसकी अलग पहचान बनी हुई है। चौदहवीं शती में इस भू–भाग का नाम बुन्देलखण्ड़ पड़ा, इसके पूर्व यह चेदि जनपद, जुझौति, जैजाकभुक्ति, विन्ध्यखण्ड, विन्ध्यप्रदेश आदि नामों से अभिहित होता रहा है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में यमुना एवं नर्मदा के मध्य स्थित भाग को युद्धदेश कहा गया है। टालमी के 'सेन्ड्रावेटिस' से भी बुन्देलखण्ड क्षेत्र की पहचान की गई है। चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में प्रयुक्त विस्तार को अंकित करने का प्रयास किया है।

श्री गोरेलाल तिवारी ने बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास नामक पुस्तक में इसकी सीमायें निर्धारित की हैं कि ''भारत वर्ष के मध्यभाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं के संकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि सौन्दर्यलंकृत जो प्रदेश है, वही बुन्देलखण्ड है।''

बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना इस तरह से है – उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा से लगा हुआ सतपुड़ा पर्वत, पूर्व में तमसा नदी, दक्षिण में नर्मदा से लगा हुआ सतपुड़ा, पूर्व में तमसा और पश्चिम में चम्बल नदी।

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस,
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहू होंस।

उत्तर समतल भूमि, गंग जमुना सु बहति है,
प्राची दिशि कैमूर सोन, काशी सुलसति है।

दक्खन खो विध्याचल, तन शीतल करनी,
पश्चिम में चम्बल चंचल, सासेहित मन हरनी।

तिन मधि राजे गिरि, बन सरिता सहित मनोहर,
कीर्ति स्थल बुन्देलन को, बुन्देलखण्ड वर।।

स्वनाम धन्य महाराज छत्रसाल के समय की बुन्देलखण्ड की सीमा उपरोक्तानुसार मानी गई है। उपरोक्त सीमा के अनुसार वर्तमान उत्तर प्रदेश के झॉसी, जालौन, बॉदा और हमीरपुर जिले, ग्वालियर राज्य में भिण्ड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़ तथा भेलसा जिले, ओरछा, दतिया, समरथ, पन्ना, चरखारी, बिजावर, अजयगढ़, छतरपुर आदि बुन्देली 36 रियासतें जो अब विन्ध्यप्रदेश में विलीन हो चुकीं हैं। मध्यप्रदेश के उत्तर में सागर, जबलपुर, होशांगाबाद तथा भोपाल राज्य बुन्देलखण्ड की सीमा के अन्तर्गत आता है।

सुकवि तथा वीर प्रसविनी इस बुन्देलखण्ड की भूमि को प्रकृति ने उदारतापूर्वक अनोखी छटा प्रदान की है। यहॉ पग–पग पर कहीं सुन्दर सघन वन और कहीं शस्यश्यामला भूमि दृष्टिगोचर होती है। विन्ध्य पर्वत की श्रेणीयां यत्र–तत्र अपना सिर ऊँचा किये खड़ी हैं। यमुना, बेतवा, धसान, केन, नर्मदा आदि कलकल–नादिनी सरितायें उसके भू–भाग को सिंचित करतीं हैं। वन–उपवन नाना तरह के फूल, फल से सदा लदे रहते हैं। सिंह, तेन्दुआ, रीछ, स्वर्णमृग (चीतल) आदि नाना जाति के पशु–पक्षी स्वच्छन्द विचरते हैं। स्वच्छ जल से भरे अनेक सरोवर प्रकृति में सौन्दर्य को शतगुणा बढ़ाते हैं। यहॉ प्रकृति अपने सहज सुन्दर रूप में अवतरित हुई है। इस प्रान्त के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर मानव हृदय अपने आप ऐसे मनमोहक हो जाते हैं कि *''गिरा अनयन, नयन बिन वानी,* की बात चरितार्थ हो उठती है।

बुन्देलखण्ड का भू–भाग प्राचीन कल्पयुगीन भौमिकीय संरचना का एक महत्वपूर्ण भाग था। जिसे 'विन्ध समूह' के नाम से जाना जाता है।

महाकल्पीय भारतीय भू–संरचना में पुराण महाकल्प का उत्तरकाल टेरिडोनियल युग के नाम से विख्यात है। भारत के मध्य भाग में पश्चिम में चित्तौड़गढ़ से लेकर पूर्व में सोन पर स्थित रोहताश स्थान तथा उत्तर में ग्वालियर तथा आगरा के

मध्यवर्गीय भाग से लेकर नर्मदा तक लगभग 1,04,000 वर्ग कि.मी. में विन्ध्य समूह की शैलें विद्यमान हैं। जिन्हें विन्ध्यक्रम कहा जाता है।

भूगर्भशास्त्रियों ने पृथ्वी और उसके जीवों के संदर्भ में तीन काल माने हैं। केम्ब्रियन काल, मैसोजोयिक काल और कैमोजोयिक काल। केम्ब्रियन काल मोटे तौर पर चालीस या पैंतालीस करोड़ वर्ष पहले का समय सूचित करता है। मैसोजोयिक काल पन्द्रह करोड़ वर्ष पहले का समय बतलाता है और तीसरा युग छः करोड़ वर्ष पहले प्रारम्भ होता है।

बुन्देलखण्ड का निर्माण केम्ब्रियन काल में हुआ है। पृथ्वी का यह भाग जल के ऊपर आने के बाद फिर जल के नीचे नहीं गया, जबकि इसके पास ही गंगा और सिंधु के कछार में प्रत्येक युग में नई मिट्टी जमा होती गई है और पहले के निचले भाग को ऊपर आते गये और ऊँचे होते गये। निम्न विन्ध्यक्रम का यह क्षेत्र पश्चिम में सासाराम से लेकर नर्मदा, नर्मदा–सोन जल विभाजक तक मालवा और बुन्देलखण्ड प्रदेशों में 385 कि.मी. लम्बाई और 16 कि.मी. चौड़ाई में विद्यमान है। औसत 1000 मीटर की मोटाई के इस क्षेत्र के आधार में संगुटिकाश्म एवं क्वार्टजाइट और अपर शैल एवं चूने का पत्थर मिलता है। इस क्षेत्र को 'शिमरी' शैलमाला कहा जाता है।

बुन्देलखण्ड का भू–भाग वैदिक काल से ही चेदि जनों द्वारा सन्निबसित रहा है। चेदिजनों का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। जिसमें उनके राजा बसु की दान स्तुति एक ऋचा के अन्त में दी गई है। इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में चेदि जनपद शक्तिशाली रहा होगा, यहां के राजा अपने एक यज्ञ में ब्रह्मा का पद सुशोभित करने वाले एक पुरोहित को दास के रूप में दस राजाओं का दान करते हुए बताया गया है। इस प्रदेश की नदियां भारत वर्ष की नदियों में सबसे प्राचीन हैं। नर्मदा और ताप्ती ऐसी नदियां हैं जो पूर्व से पश्चिम की ओर बहतीं हैं।

भू–गर्भ शास्त्रियों ने बुन्देलखण्ड की तहदार चट्टानों को बुन्देलखण्ड नीस की संज्ञा दी है। इनसे लगी जमीन में या पत्थरों की तह में लोहा, मैग्नीज, तॉबा, सीसा, सोना, बाक्साइट बहुतायत में पाया जाता है।

चेदि राष्ट्र का स्पष्ट उल्लेख महाभारत में मिलता है। महाभारत में चेदि नरेशों में उपरिचर, शिशुपाल, घृष्टकेतु, सुबाहु नामक राजाओं का उल्लेख है।

भौगोलिक दृष्टि से अरावली पर्वत बुन्देलखण्ड के पश्चिम में आता है, यह कडप्पा तह से बना हुआ है। कड़प्पा तह धाखड़ तह के पश्चात् जमा होने वाली तह मानी जाती है और यह कड्डाया जिले में पायी जाती है। इस अंचल में बिजावर और ग्वालियर राज्य में कड्डाया चट्टानें पायी जाती हैं इनके चकमक पत्थर, चूने के पत्थर और क्लोराइट एण्डालसाइट स्टेरोलाइट तथा गारनाइट विशेषतौर से पाये जाते हैं।

नामकरण :–

उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा के बीच के क्षेत्र भिन्न–भिन्न कालों में अनेक नामों से संबोधित किये गये। आदिवासी गौंड़ जाति की प्रधानता के कारण यह प्रदेश *'गोंडवाना'* नाम से सम्बोधित हुआ। पुराणों में इस भू–भाग का नाम *'मध्यप्रदेश'* भी पाया गया है। इसी आधार पर ब्रिटिश शासनकाल में इसको *'सेंट्रल इण्डिया'* नाम से पुकारा गया। इस क्षेत्र में विन्ध्याचल की श्रेणियॉ सर्वत्र फैली हैं इसलिए इसे *'विन्ध्याचल'* भी कहा जाता रहा है।

वनों की प्रधानता से यह *'अरण्यक'* या *'वन्य देश'* भी कहलाया। कालान्तर में इसे *'आटव्य देश'* के नाम से प्रसिद्धि हुई।

महाभारत काल में यह *'चेदिदेश'* नाम से संबोधित हुआ। यहॉ का राजा शिशुपाल चेदि–चन्देरी का राजा था, शुक्तिमति (केन) नदी तक इसकी सीमायें थीं। धसान नदी के निकटवर्ती क्षेत्र को *'दशार्ण'* नाम से पुकारा जाता था। सम्भवतः हम भू–भाग से दस नदियॉ प्रवाहित होतीं थीं। यहॉ के राजा हिरण्य वर्मा की पुत्री पांचाल देश के राजा शिखण्डी को ब्याही थी। इसी वंश के शासक सुधरमा और भीमसेन के बीच युद्ध हुआ। इनकी राजधानी विदिशा थी।

महात्मा बुद्ध के समय देश में सोलह महाजन पद थे। इनमें से ग्वालियर से केन नदी का प्रदेश पांचालों के अधीन था। जिनकी राजधानी कन्नौज थी। केन नदी से पूर्व वाले प्रदेश पर वत्सों का राज्य था, यमुना नदी के तट पर स्थित कौशाम्बी इनकी राजधानी थी। दशार्ण के दक्षिण में पुलिन्द राज्य था। इस वंश के शासक की

एक पुत्री चेदिवंश के शासक भीम को ब्याही थी, जिसकी पुत्री दमयंती थी। यह राज्य नर्मदा नदी के तट तक फैला था। राजमार्ग भरहुत से होता हुआ कौशम्बी तक जाता था। चेदि देश की सीमायें सोन नदी तक विस्तृत थीं जो कालान्तर में मगध वंशीय शासकों के अधीन हो गई।

छठी शती ईसवी में यमुना नदी और नर्मदा नदी के बीच का क्षेत्र *'जेजाहुती'* जुझौतिया कहा जाता था क्योंकि अधिकांश यात्रा में जुझौतिया ब्राह्मण, बनिया और अहीर यहाँ के निवासी थे। युद्ध प्रिय प्रवृत्ति के कारण *'युद्ध देश'* या *'जुझौतिया'* का नाम भी लोकप्रिय हो गया। चंदेल वंश के राजा जयशक्ति या जेज्जाक अत्यन्त प्रतापी राजा थे। बारहवीं शदी के अंत तक *'जेज्जाकभुक्ति'* के नाम से ही यह जनपद प्रसिद्ध था। महाराज धंग का राज्य ग्वालियर से विदिशा तथा पूर्व में सोन नदी तक फैला था। इसकी पुष्टि मदनपुर के सन् 1182 ई. के शिलालेख से हो जाती है।

अखण्ड राजस्व पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुमुना।
जेज्जाक भुक्ति देशोयम् पृथ्वी राजेन सोभिता।।

ईसा की चौदहवीं सदी में इस प्रदेश में बुन्देलों का राज्य प्रारम्भ हुआ। इस राज्य की राजधानी गढ़कुंडार थी। इसके पश्चात् गढ़कुंडार से ओरछा हो गयी। बुन्देलों के राज्य विस्तार के समय निम्न पद से स्पष्ट होता है –

इत चंबल उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।

बुन्देला वंश के शासन करने से इस प्रदेश का नाम *बुन्देलखण्ड* पड़ा। इस क्षेत्र की भाषा बुन्देली है। इसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति है। बुन्देलखण्ड का सीमांकन समय के साथ परिवर्तित होता रहा है। कैप्टन जेम्स फ्रेंकलिन के अनुसार बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी प्रवाहित है और दक्षिण में बरार और मालवा प्रदेश हैं, पूर्व में बघेलखण्ड है तथा पश्चिम में सिंधिया अधिकृत राज्य है। इसमें टेहरी, झाँसी, दतिया, समथर देशी राज्य समाविष्ट हैं।

उत्तरी–पश्चिमी प्रान्त के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड प्रदेश सन् 1871 ई. में ई.टी. ऐटिकिन्सन के अनुसार उत्तर में यमुना नदी तक, उत्तर पश्चिम में चम्बल नदी तक, दक्षिण में जबलपुर तक तथा उत्तर–पूर्व में बघेलखण्ड और मिर्जापुर तक विस्तृत है।

इसके अंतर्गत बॉदा, झॉसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर के ब्रिटिश शासित जिले, संधि राज्य ओरछा, दतिया, समथर सनद प्राप्त राज्य अजयगढ़, अलीपुर, अण्टभैया जागीर, धुरबई, टोरी फतेहपुर, बिजना पहाड़ी, बंका, बरौधा, बावनी, बेरी, बेल्ट, बिजावर चरखरी तथा चौबियाना जागीर, भैंसोधा नयागॉव, पालदेव, पहाड़ी, तरांव तथा जिगिनी, खनिधान, लुगासी, नमागॉव, रेवई, पन्ना, सरीता सम्मिलित थे। सागर तथा दमोह जिले नर्मदा क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अधीन थे।

मुगल शासन बुन्देलखण्ड का क्षेत्र आगरा इलाहाबाद तथा मालवा प्रान्त के सूबेदारों द्वारा नियंत्रित था। केन तथा धसान नदी द्वारा विभाजित बुन्देलखण्ड पूर्वी और पश्चिमी बुन्देलखण्ड राज्य के नाम से संबोधित किया जाता था। इस क्षेत्र में वन तथा पहाड़ों की अधिकता थी। इस क्षेत्र को डांग के नाम से अभिहित किया जाता था। अजयगढ़, कालिंजर, चित्रकूट आदि क्षेत्र इसके अंतर्गत आते थे।

बुन्देलखण्ड का सीमांकन अनेकों विद्वानों ने किया है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने बुन्देली भाषा के आधार पर बुन्देलखण्ड का क्षेत्र निर्धारित किया है। उनके अनुसार बुन्देलखण्ड उत्तर में चम्बल नदी के उस पार मैनपुरी, आगरा, इटावा के दक्षिणी भाग तक, पश्चिम में पूर्वी ग्वालियर तक, दक्ष्णि में सागर, दमोह तक ही नहीं, भोपाल का पूर्वी भाग, नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी, बालाघाट, छिन्दवाड़ा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है। पूर्व में बॉदा की भाषा बुन्देली नहीं है।

श्री एस.एम. अली के अनुसार विभिन्न पुराणों के आधार पर विन्ध्य क्षेत्र में तीन जनपद विदिशा, दशार्ण एवं करूण की स्थिति का विवरण दिया है। विदिशा में उत्तरी वेतवा का बेसिन दशार्ण धसान नदी और उसकी गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर के पठार तक फैला हुआ प्रदेश तथा करूण के अंतर्गत सोन नदी के बीच समतलीय मैदान समाविष्ट किया है।

त्रिपुरी जनपद में जबलपुर, मण्डला, नरसिंहपुर के जिले माने हैं। श्री जयचंद विद्यालंकार ने बुन्देलखण्ड को विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों में फैला हुआ माना है जिसमें बेतवा, धसान, केन नदी एवं नर्मदा की उत्तरी घाटी पचमढ़ी से अमरकंटक का क्षेत्र शामिल किया है।

डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने बुन्देली का विस्तार उत्तर में मुरैना जिला, पश्चिम में शिवपुरी, गुना तक, दक्षिण में बैतूल तक माना है।

पार्टिजर के अनुसार *'चेदिदेश'* उत्तर में यमुना तट से दक्षिण में मालवा के पठार, दक्षिण पूर्व में कर्बी (पयस्वनी) नदी से उत्तर–पश्चिम में चम्बल नदी तक फैले हुए प्रदेश का नाम है।

डॉ. डी.बी. मिरासी के अनुसार भी मध्यकाल में बुन्देलखण्ड का विस्तार यमुना नदी से नर्मदा नदी तक था।

डॉ. महेश प्रसाद जायसवाल के अनुसार मध्यप्रदेश के दुर्ग जिले का कुछ भाग बॉदा का कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के चॉदा, बुलढ़ाना, भण्डारा, अकोला के कुछ भाग को बुन्देलखण्ड माना है।

भौतिक भूगोल की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की दक्षिणी सीमा विन्ध्य की पर्वत श्रेणियॉ हैं, ये नर्मदा नदी तक फैली हुई हैं। जल विभाजक रेखा की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के दक्षिण में महादेव पर्वत श्रेणी और दक्षिण पूर्व में मैकल पर्वत श्रेणी उचित ठहरती हैं।

सीमांकन से तात्पर्य ऐसे प्राकृतिक सीमांकन से है, जो उस क्षेत्र के ऐतिहासिक परिवेश, संस्कृति और भाषा के अद्भुत ऐक्य को सुरक्षित रखते हुए उसे दूसरे जनपदों से अलग करता है। बुन्देलखण्ड की भौगोलिक संरचना को चार मुख्य भागों में विभक्त किया गया है :–

- आर्कियन क्रम,
- संक्रमति क्रम,
- विन्ध्ययन क्रम,
- नवीनतम अभाव।

बुन्देलखण्ड का आर्कियन क्रम भूपपर्टी के प्राचीनतम् विद्वानों को अभिव्यक्त करता है।

भू–गर्भ वैज्ञानिक झींगरन के अनुसार इस क्रम की चट्टानें 130 करोड़ वर्ष प्राचीन हैं। बुन्देलखण्ड ग्रेनाइट और बुन्देलखण्ड नीस इस क्रम की प्रमुख चट्टानें हैं। झॉसी, ललितपुर, महोबा तथा छतरपुर जनपद की बिजावर तहसील इन चट्टानों का प्रतिनिधित्व करतीं हैं।

संक्रमित क्रम ग्वालियर और बिजावर श्रृंखलाओं का मिला जुला रूप है। इस क्रम की चट्टानों की संरचना अरावली और विन्ध्यन क्रम के समकालीन हैं। ग्वालियर क्रम चट्टानों का इस क्षेत्र में अभाव है किन्तु बिजावर क्रम की चट्टानें ललितपुर की महरौनी तहसील में पायी जाती है। क्वार्ट्ज, सिलिकन, ब्रेसिया और चूना पत्थर इस क्रम की मुख्य चट्टानें हैं।

आज से 60 करोड़ से 70 करोड़ वर्ष पूर्व बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग एक भू–सन्मति थी जिसे विन्ध्यन सागर कहते थे। एक भू गर्भीय शास्त्री ओल्डहय ने इन चट्टानों को भाण्डेर, रीवा और कैमोर क्रम में रखा है। भाण्डेर और रीवा क्रम की चट्टानें मध्यप्रदेश के दमोह जिले में पायी जाती है। कैमोर क्रम की चट्टाने ललितपुर के मेहरौनी तहसील, बॉदा जनपद के कालींजर क्षेत्र, चित्रकूट जनपद के चित्रकूट, मऊ क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

यह चट्टानें विन्ध्य पठार में खड़े स्कार्प का निर्माण करतीं हैं। इस क्रम की चट्टानों को एक सामाजिक, संस्कृतिक सीमा रेखा प्रदान की है। दक्षिण और उत्तरी भारत के लिए एक विभाजन रेखा बनाई है। बुन्देलखण्ड की भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई इकाईयों में अद्भुत समानता है। भूगोल वेत्ताओं का मत है कि बुन्देलखण्ड की सीमायें स्पष्ट और भौतिक तथा सांस्कृतिक रूप में निश्चित हैं। वह भारत का एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें न केवल संरचनात्मक एकता भौम्याकार की समानता, जलवायु की समानता है वरन् उसके इतिहास, अर्थव्यवस्था और सामाजिकता का आधार भी एक है। वास्तव में समस्त बुन्देलखण्ड में सच्ची सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक एकता है। यह एक भौगोलिक प्रदेश है। यहॉ हम भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक दृष्टियों को एक साथ लेकर सीमांकन का प्रयास करेंगे।

आधुनिक जमाव ग्रेनाइट चट्टानों के ऊपर कॉप मिट्टी के जमाव को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे–जैसे हम दक्षिण से उत्तर में यमुना नदी की ओर चलते हैं, वैसे–वैसे मिट्टी के कणों का आकार महीन से महीनतर होता है। जालौन, हमीरपुर, बॉदा तथा चित्रकूट जनपद में उत्तरी क्षेत्रों में इस मिट्टी का व्यापक जमाव देखने को मिलता है। यह मिट्टी यहॉ की कृषि अर्थ व्यवस्था के लिए मूलाधार पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है।

उपर्युक्त भू–भाग के अतिरिक्त उसके चारों ओर की पेटी मिश्रित भाषा और संस्कृति की है। कुछ जिलों के निवासी आज भी स्वतः को बुन्देलखण्ड का अंग मानते हैं और उनकी भाषा और संस्कृति पहले बुन्देली ही रही है, पर बाद में परिवर्ती सम्पर्कों के कारण मिश्रित हो गयी है। ऐसे जिलों में बॉदा, गुना आते हैं। अतएव ऐसे जिले बुन्देलखण्ड के अंतर्गत सम्मिलित करने में कोई हानि नहीं है।

जिलों को सामने रखकर समझने में भले ही कुछ उलझन सी लगे पर प्रदेश की सीमा रेखायें बिल्कुल स्पष्ट और अधिकतर प्राकृतिक हैं। उत्तर में यमुना नदी दक्षिण में महादेव पर्वत, उत्तर पूर्व में निचली केन नदी, पूर्व में भाण्डेर श्रेणियॉ, दक्षिण पूर्व में मैकल पर्वत श्रेणी, उत्तर पूर्व में चम्बल और सिंध नदियों के क्षेत्र में जल विभाजक तथा मुरैना और शिवपुरी के पठार, पश्चिम में उत्तरी वेतबा और सिंध नदियॉ तथा मध्य भारत का पठार एवं विन्ध्य श्रेणियॉ। ऊपरी प्राकृतिक सीमा सभी दृष्टियों से एक जनपदीय इकाई का निश्चित रेखांकन करतीं हैं और यह सीमांकन बुन्देलखण्ड की सीमा विवादों में उलझे शोधकर्ताओं को एक निश्चित दिशा देगी –

यमुना चम्बल टौस नर्मदा, नदियों से घिरा हुआ।
केन धसान बेतवा की, निर्मल लहरों से मिला हुआ।।

तानसेन संगीत विद्, बैजू की मोहक तान लिये।
झॉसी गढ़कुण्डार गढ़कोट, दृढ़ दुर्गो की शाल लिये।।

हीरा पन्ना नर रत्नों की खान, यही अद्भुत अखण्ड है।
विन्ध्याचल के प्रांगण में बसा हुआ बुन्देलखण्ड है।।

यहीं देवगढ़ खजुराहो की मूर्तिकला का वैभव है।
वीर भूमि बुन्देलखण्ड सम्पूर्ण देश का गौरव है।।

बुन्देली भू तेरा अभिनन्दन :–

सौरभ है तेरी माटी में, महके ज्यों मलियागिर चन्दन।

नद पंच केन अरू बेत्रवती जल आपूरित ले कर में।।
करती धरती का अभिसिंचन, जन प्यास बुझाती घर–घर की।।

——

वर वीर देश बुन्देलखण्ड, तपयोग केन्द्र हिम भरतखण्ड।
तुव विशद विन्ध्य गिरि गगन ताहि, नद गर्द गूढ़ पाताल जाय।।

रत्नादि पर्व सम्पन्न अंग, कहु सुथल श्रृंग कहु कठिन श्रृंग।
प्रख्यात चार सरितन मझार, तब अति अनूप आनन्द अगार।।

बुन्देलखण्ड की भौतिक बनावट के लिए ओ.एच. को स्पेट महोदय ने वृद्ध धरातलीय आकृति के नाम से अभिहित किया है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में घिसी–पिसी धरातलीय संरचना को प्रकट करता है। लगभग 68 प्रतितात क्षेत्र 300 मीटर से कम ऊँचा है। लगभग 4 प्रतिशत क्षेत्र 450 मीटर से अधिक ऊँचा है तथा शेष 300 से 450 मीटर ऊँचा है। उत्तर का 1/3 भाग समतलीय मैदानी भाग है जो 300 मीटर से कम ऊँचा है। इसके दक्षिण में विन्ध्यन पठार विद्यमान है। जो 300 से 450 मीटर ऊँचा क्षेत्र है। मुख्य रूप से ग्रेनाइट चट्टानों की संरचना वाला यह क्षेत्र कहीं–कहीं 600 मीटर ऊँची चोटियों को प्रदर्शित करता है।

बुन्देल खण्ड के लोकनृत्य इतिहास एवं परिचय

लोक शब्द क्षेत्र विशेष में रहने वाले समाज का बोध होता है, जो रीति–रिवाज परम्पराओं, संस्कारों से जुड़ा है। समृष्टि भाव का सही प्रतिपादन करता है। जब व्यक्ति अपना स्वत्व समृष्टि में विलीन करता है तो उस समाज का निर्माण करता है जो सुगठित और संस्कार सम्पन्न होता है, वही लोक कहलाता है। डा. सत्येन्द्र के अनुसार लोक की व्याख्या ''लोक साहित्य की अभिव्यक्ति में लोक शब्द का अभिप्राय मनुष्य, समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''

डा. श्याम परमार ने लोक शब्द की परिसीमा को स्पष्ट करते हुये ''आधुनिक साहित्य की नूतन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन समाज जिसमें पूर्व संचित परम्परायें, भावनायें, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है, जिसमें भाषागत और साहित्यगत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।''

लोक के संबंध में डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्र से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चलित और प्रभावित करती है वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकवाट्यम, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जाती हैं। लोकचित्र से तात्पर्य उस जनता के चित्र से है जो परम्परा प्रथित और बौद्धिक विवेचना परक शास्त्रों और उन पर की गई टीका–टिप्पणीयों के साहित्य से आपरिचित होता है।

डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के विस्तार हुये – साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है उन सबको लोकसाहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री–पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है। लोक कला में मानव हृदय का यथार्थ चित्रण होता है। जीवन के निश्चल और स्वाभाविक रूप का दर्शन और जन समाज की भावनायें का वास्तविक प्रतिनिधित्व लोककला में ही मिलता

है। शिष्ट साहित्य अथवा शास्त्रीय कला में चित्रण प्रायः काल्पिनिक एवं अतिरंजित पाया जाता है। इसमें विशाल मानव समाज के बहुत थोड़े से व्यक्तियों के जीवन की विशिष्टताओं की झांकी मिल सकती हे। अखण्ड मानव समाज की एकता का परिचय जितना सुन्दर हमें लोक कला में मिलता है, उतना अन्यत्र संभव नहीं है। क्योंकि इसकी भाषा भावुक हृदय की भाषा है। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र मानव का एक जैसा हृदय बोल रहा है।

लोककला संगठित समाज की द्योतक है। आदिम मानव की कला प्रागैतिहासिक कला की श्रेणी में स्थान पाती है। पर सामान्य रूप से संगठित जन समाज की स्वीकृति एवं लगाव होता है, वही उसका अन्तनिहित व्यक्तित्व है जो उसे कला के अनेक प्रकारों से भिन्न व्यक्त करता है। हरबर्ट रीड़ ने इस प्रकार की कला के लिये ''प्रीजेन्ट आर्ट'' शब्द का प्रयोग किया, जिसके अनुसार –

"The art of simple unsophisticated people Generally Knownas Proma Sophisticated love of simplicit and simle life."

लेनिन ने कहा कि कला जन की संपत्ति है, उसकी जड़ें समाज के अंदर तक पहुंचनी चाहिये। वह जन के लिये बोध गम्य और प्रेम होनी चाहिये, इस कसौटी पर लोककला अथवा प्रीजेन्ट आर्ट खरी उतरती है।

स्वाभाविकता और सरसता लोककला में समाई रहती है। इसी कारण उसे सर्वप्रियता का वरदान मिला है। लोककला किसी व्यक्ति विशेष की भावाभिव्यक्ति न होकर सामूहिक भावों की व्यंजना है।

लोक संस्कृति में लोक संगीत लोकनृत्य आदि ऐसी विधायें हैं जिसमें मानव हृदय की निर्मल भावनायें, आस्थायें, मानवीय मूल्य मातृ भूमि से प्यार सहज भाषा में निष्कपट प्रगट हुये हैं।

लोकनृत्य का परिचय

आदिमकाल से ही प्राकृतिक छटा के प्रति आकर्षित होना मनुष्य का स्वभाव रहा है। फलस्वरूप मनुष्य में सहयोग और सहकारिता की भावना ने जन्म लिया। उसने समूहों में चलना–फिरना और शिकार करना प्रारम्भ किया। शिकार के समय सफलता प्राप्त करने पर एक साथ खुशी से चिल्लाकर, नाचकर, कूदकर और विभिन्न प्रकार के गतिशील अंग संचालनों द्वारा वह अपना उत्साह और हर्ष प्रकट करने लगा। अनादिकाल से मानव अपने आनन्द के क्षणों में प्रसन्नता से झूमकर अंगभंगिमाओं का अनायास, अनियोजित प्रदर्शन करता आया है, यह उसका मूल स्वभाव है। मानव की इस स्वाभाविक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति ने ही धीरे–धीरे नृत्य, संगीत आदि कलाओं को जन्म दिया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार "भावना से उद्वेलित संचालन ही नृत्य है।

स्पष्ट है कि जब–जब आनन्द का अतिरेक हुआ, मानव शरीर थिरक उठा। इस थिरकन को धीरे–धीरे विकासशील मानव ने विविध भंगिमाओं से संजोया है। ये भंगिमाएं प्रकृति में बिखरे हुये सौन्दर्य की अनुकृति बनकर लोकनृत्य के कलेवर में समाहित होती चली गई और इस प्रकार आनन्दातिरेक में जब मानव के शरीर में एक–एक अंग फड़कने लगा उसी को नृत्य की संज्ञा दी गई।

जैसे हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति "खुशी में नाच उठा।" यही अभिव्यक्ति जब समूह में होती है तो अंग संचालन एक निश्चित दिशा पाने लगता है और यही आगे चलकर मानव के समाजीकरण की प्रक्रिया का अंग बन जाता है। एक लय के सहारे एक विचारधारा के लोग जब नृत्य करते हैं तो उनकी आंगिक प्रक्रियायें या तो एक जैसी होती हैं या एक–दूसरे को देखकर एक जैसी बन जाती हैं। अतः एक ओर नृत्य जहां उत्फुलताजन्य है, वहीं उत्फुलता का जनक भी है।

प्रसिद्ध अमेरिकन नृत्यकार Ouspenski ने कला की व्याख्या इन पांच शब्दों में की है :– "Art is communication of Ecstacy."

भौतिक शास्त्रियों ने नृत्य को समस्त सृष्टि में ही व्याप्त बताया है। हर परमाणु नृत्य कर रहा है। हर ग्रह, उपग्रह नृत्य कर रहा है। निर्जीव पदार्थों तक में लय को

विद्यमान बताया है, जैसे चट्टान, समुद्र तट व रेत के टीलों में बने लय के अनेक प्रकार समुद्र की लहरों अथवा वायु के झकोरों से लहराते पेड़ लयात्मक प्रभाव देते हैं।

लय प्रकृति क स्वभाव है। पृथ्वी पर जीवन के लिए जो ऊर्जा सौर मंडल से आ रही है, वह ''लय'' में आती है। इस सिद्धान्त को हमारे मुनियों ने बहुत पहले प्रतिपादित कर दिया था। उसने इस चिन्तन ने शिव के तॉडव को ''ऊर्जा'' के नृत्य की संज्ञा दी है और इसीलिए ''शिव'' को ''ऊर्जा'' का प्रतीक मानकर प्रथम नृत्यकार माना गया है।

''कला प्रकृति के क्रिया कलापों पर आधारित है। उदाहरण के लिए उसने बताया कि मंडलाकार नृत्य आकाश में चलने वाले नक्षत्र मंडल की अनुकृति है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार लोकनृत्य आदिम जाति से शुरू हुआ जब मानव ने यह अनुभव किया कि लोकनृत्य भावनाओं के सम्प्रेषण का एक मात्र साधन है। लोकनृत्य के द्वारा ही उसने पारलौकिक संसार को समझने का प्रयास किया। उसने लोकनृत्यों को दैवी शक्तियों को समझने और प्रसन्न करने का साधन बनाया। आराधना, विपदाओं को दूर भगाने, शत्रु पर विजय पाने, ऋतुओं का बदलाव, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय होने वाली नैसर्गिक अनुभूति, चन्द्रमा की बढ़ती हुई कांति उसके श्रम साधन, अच्छी फसल के लिए वर्षा आगमन, मानव के लिए हितकारी अनेक साधन और यौवन की देहरी से प्रौढ़ता में प्रवेश करने की सिरहन आदि अनेक बातों के लिए आदिम मानव ने लोकनृत्यों को सबसे सशक्त और प्रभावी माध्यम बनाया।

मनुष्य ने आराधना की अनुभूति सर्वप्रथम प्राकृतिक शक्तियों से प्राप्त की। बादल की गरज, वर्षा, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और जानवर दैवी शक्ति के प्रतीक माने गये। इसीलिए हिन्दुओं के हरेक देवता का वाहन कोई न कोई जानवर माना गया और उसकी पूजा होने लगी। इस प्रकार आस्थायें नृत्य और संगीत के माध्यम से एक पीढ़ी को मिलती रहीं। इस प्रकार प्रतीक विश्व की अनेक संस्कृतियों में मिलते हैं।

भरत के नाट्य शास्त्र में भी लोकनृत्यों की प्राचीनता का स्पष्ट संकेत पाया जाता है, जिसका आधार लोकाभिरुचि रहा है।

लोकनृत्य विषयक सामग्री अनेक रूपों में बिखरी हुई है। यद्यपि लोकनृत्यों का पृथक कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता तथापि वाङमय के जिन विभिन्न क्षेत्रों में लोकनृत्यों के बीज बिखरे हुये हैं, उनमें वेद, पुराण तथा अन्य ग्रंथों में लोकनृत्य का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है।

आदि मानव की गुफाओं में प्रायः शिकार के चित्र मिले हैं। शिकारी नृत्य भी आदि मानव का एक नृत्य है। शिकार के बाद बहुतायत से जो चित्र मिले हैं, वे नाग के हैं। नाग–नृत्य भी आदि मानव के नृत्यों में से एक है। यह सब तथ्य एक विशेष प्रकार के रहस्य की पुष्टि उन नृत्यों से कर देते हैं, जो आजकल भी युद्व प्रिय (मार्शल) जतियॉ करती हैं। जिस जाति में अधिक योद्धा हैं उनके नृत्य भी एक विशेष प्रकार की गति से प्रभावित है। ऋग्वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास का प्राचीनतम युग है। ऋग्वेद में गीत तथा वाद्य के साथ–साथ नृत्यकला का अस्तित्व भी पाया जाता है। विवाह नृत्य, फसल काटने के उत्सव, बलिदान अथवा सामाजिक एकत्रीकरण इस प्रकार के प्रत्येक अवसर पर संगीत और नृत्य का उल्लेख है।

वेद की एक ऋचा में आदिति के जन्म के समय देवताओं में जो हर्ष हुआ उसका उल्लेख इस प्रकार है :–

''तब नृत्यकारों के पैरों की तरह धूल के घने बादल उठते हैं।''

ऋग्वेद की ही एक अन्य ऋचा में समूह नृत्य का विषद् वर्णन है :–

''वो अपनी बहनों के साथ आलिंगन करके नाचने और अपने पद्चापों से पृथ्वी को प्रतिध्वनित करने लगे।''

ऋग्वेद कालीन समाज ऐसी उल्लास प्रिय समाज की तस्वीर है जहां कार्य समाप्त करने के बाद लोग मधुपान के लिए एक साथ बैठते थे। उनकी स्त्रियां सुन्दर परिधानों में सजधज कर मनोरंजन के कार्यक्रमों में जाती थीं। जहां युवक और युवतियां वन की ओर भागते हैं, जहां वन और मैदान सौन्दर्य से भरे हुये हैं, ऐसे वातावरण में जाकर वे समूह–नृत्यों में शामिल हो जाते हैं। झॉझों की आवाज और एक दूसरे की बांह को पकड़कर युवक और युवती जब चक्कर लेकर नाचते हैं तो धरती गॅूज उठती है और धरती से उठी धूल के बादलों में समूह–नृत्य ढक जाता है।

''प्रेष्याः संशस्ति पूर्ण उटकुम्भास्तिस्त्रैवमाः पड्डुत्तमाः। इमं धिष्ठमं कुंभं चत्रिः प्रदक्षिणं परिब्रजाय दक्षिणैः पाणिभिर्दक्षिणानुरूनाध्नाना एहूयेषा 3 इदम्मधू इदम्मधिवति वदन्त्यः। महाव्रत नामक सोमयाग के अवसर पर दासियों के सामूहिक नृत्य का आयोजन होता था। इस नृत्य में तीन से छह तक नर्तकियां होती थीं। प्रत्येक नर्तकी जलपूरित कुंभ को मस्तक पर रखकर बायीं ओर से दायीं ओर मण्डलाकार गति से नृत्य करती थीं।

''विवाह के अवसर पर चार से लेकर आठ तक सुहागनियों को सुरा पिलाकर चतुर्वार नृत्य करने के लिए प्रेरित किया जाता था।''

यजुर्वेद के वाङमय से स्पष्ट है कि कलश लिये हुये महिलाओं का वर्तुलाकार नृत्य महाव्रत नामक सोमयाग में होता था तथा मुंह से वे गीत के चरणों को गाती थीं।

यजुर्वेद और अथर्ववेद में वर्णित विभिन्न विधि विधानों के संदर्भ में अनेक वैधानिक, जादुई और मूर्छा के वेद–वर्णित नृत्य भारत में आज भी आदिवासी लोकनृत्य के रूप में देखने को मिलते हैं।

रामायणकाल में नृत्य जीवन का आवश्यक अंग बन चुका था। रामायण में उल्लेख आता है कि – ''रामचन्द्र के जन्मोत्सव के समय अयोध्या के मार्ग नट–नर्तकों से संकुल हो गये थे।

रामायण में नृत्य तथा नृत्त दोनों का उल्लेख है। सीता के संबंध में वार्ता पाकर वानरों ने गान–नृत्य के द्वारा उल्लास की अभिव्यक्ति की थी। लोकनृत्य की परम्परा में सबसे विशद् वर्णन हरिवंश पुराण में मिलता है जो 'रास' के बारे में है। शरद् के पूर्ण चन्द्र की धवल उजियारी में भगवान कृष्ण और गोप–गोपियां दो–दो के जोड़ के साथ वृत्ताकार नृत्य करते हैं, उसे ही रास कहा गया है। कालान्तर में इस नृत्य की अलग–अलग संरचनाएं हो गईं किन्तु मुख्य आधार वृत्त ही रहा।

महारास नृत्य में अनेक प्रकार के मण्डल बनते हैं। प्रचलित रास में नाट्य शास्त्र के अनुसार ''पिंडिबंध जाति के मण्डल बनते हैं।'' इसका सुन्दर नमूना काठियावाड़ के डांडिया रास में मिलता है और राजस्थान के गैर नृत्य में भी। हरिवंश पुराण में उल्लेख आता है कि समय–समय पर होने वाले उत्सवों में स्त्री–पुरुषों का संयुक्त नृत्य हुआ करता था। इस प्रकार के समूह–नृत्यों में छोटे–बड़े, अमीर–गरीब का भेदभाव मिटाकर सारा समाज तन्मय होकर नाचता था।

प्राक् गुप्तकाल में भी लोक–नृत्य की परम्परा विद्यमान थी। इन लौकिक परम्पराओं की सुरक्षा पुत्र–जन्म, विवाह आदि लौकिक समारोहों के माध्यम से होती थी। कालिदास की कृतियों में भी लोकनृत्यों का उल्लेख मिलता है :–

किसी भी देश एवं जाति के जीवन की गतिविध की ओर उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झांकी उसके शास्त्रीय नृत्य की अपेक्षा लोकनृत्य में ही अधिक मिलती है। प्रत्येक देश की संस्कृति का मूल उत्स वहां के लोकजीवन में परिव्याप्त है। भारतीय संस्कृति में भी लोकजीवन की व्याप्ति है। आज मस्तिष्क के अहंकार में अभिभूत मानव पर कृत्रिम आकर्षणों का मोह छाया है, बुद्धि के विलास में तल्लीन वृत्तियों पर आडम्बरों का बितान तना है। हमारी समृद्ध परम्पराएं, जिससे हमारी संस्कृति के दर्शन होते हैं, विलुप्त हो रही है। किन्तु शहरी सभ्यता की कृत्रिमता से दूर ग्रामीण अंचल में कभी भी प्रकृति के खुले प्रांगण में, खेतों और खलिहानों में, मधुर संगीत के साथ थिरकते अंगों परम्पराओं की समृद्धि के दर्शन संभव हैं।

लोकनृत्य जीवन का उल्लास सरलता से व्यक्त करते हैं। लोकनृत्यों की थिरकन में जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं सामुदायिक रूप में अभिव्यक्त होती हैं। समूह में एक साथ नृत्य करने से विचार साम्य पैदा होता है और यह एकता ही मनुष्य में स्वस्थ मानवता के गुणों का विकास करती है। छोटे–छोटे बच्चों को भी लोकनृत्य प्रिय होता है। वह भी उसे आसानी से नाच लेते हैं। बालक जब प्रसन्न होता है तो वह नाच उठता है, इतना ही नहीं और बालकों से ''चाई–माई'' (एक ही दिशा में अनवरत घूमना) घूमने को कहता है। नृत्य में भावोदेक के लिए मानव को सहज माध्यम मिला है। जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों में जैसे किसी युवा को गृहस्थी में प्रवेश दिलाना, युद्ध या शिकार के लिए तैयार करना आदि लोकनृत्य से ही सम्पन्न किये गये हैं क्योंकि यह वो परम्परागत माध्यम है जिसमें अभिव्यक्ति की पूर्णता और प्राभावोत्पादकता साकार हो सकी है। यद्यपि नृत्य में मनोरंजन की पूर्ण क्षमता है तो भी आदि मानव ने कभी भी इसे केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं माना, क्योंकि इसके द्वारा उसे जो अलौकिक अनुभूति होती थी वो मनोरंजन के स्तर से कहीं ऊंची होती थी। उन्हें इन नृत्यों से अनजान ही अन्य लाभ प्राप्त होते थे। जैसे – सामाजीकरण इत्यादि।

बुन्देली लोक नृत्यगीतों का वर्गीकरण

लोकनृत्य विभिन्न प्रकार के होते हैं। कुछ लोकनृत्य विशेष अवसरों पर ही किये जाते हैं। कुछ लोकनृत्य ऐसे होते हैं जिनका कोई समय नहीं होता। कुछ मनोरंजनात्मक होते हैं। इन सबको दृष्टिगत रखते हुये हम निम्नलिखित विभाजन कर सकते हैं :–

1. स्वान्तः सुखाय लोकनृत्य
2. अनुष्ठानिक लोकनृत्य एवं सामाजिक लोकनृत्य
3. श्रम के साथ होने वाले लोकनृत्य
4. जातिगत लोकनृत्य
5. आदिवासी लोकनृत्य।

1. स्वान्तः सुखाय लोकनृत्य :–

इन लोकनृत्यों के लिए कोई विशेष पर्व, उत्सव तथा अवसर निश्चित नहीं होते। स्वान्तः सुखाय नृत्य कभी भी मन की मौज पर प्रकट होने वाले नृत्य हैं। इनमें नित्य प्रति कभी भी मन की मौज पर प्रकट होने वाले नृत्य हैं इनमें नित्य प्रति परिवर्तन होता रहता है। जातीय तथा क्षेत्रीय विविधता उनका श्रृंगार बनाती है। इनमें अंग भंगिमाओं की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इन नृत्यों में नृत्यकार बाह्य आडम्बरों का विशेष सहारा नहीं लेता। उसकी वेशभूषा तथा प्रस्तुतीकरण में कोई दिखावा नहीं होता। नित्यप्रति की जो सादी पोशाक होती है वही आकर्षक बन पड़ती है।

ये लोकनृत्य केवल हर्ष, उल्लास और आनन्दातिरेक से संबंधित होते हैं। प्रायः दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद जब रात्रि में यह लोक नृत्य किये जाते हैं तो इनमें एक नयी स्फूर्ति, नया जीवन और आनन्द का ऐसा अनूठा सामंजस्य मिलता है जिसमें नृत्यकार अपनी विपदाओं को कुछ क्षणों के लिए भूल कर फिर से जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष लेने को सन्नद्ध हो जाते हैं।

1) ढिमरयाई नृत्य,
2) दुल–दुल घोड़ी।

2. अनुष्ठानिक लोकनृत्य एवं सामाजिक लोकनृत्य :–

जो नृत्य वैयक्तिक दायरों में से निकलकर किसी उत्सव, पर्व, रीति–रिवाज तथा सरकार के साथ जुड़ जाते हैं वे ही लोकनृत्य अनुष्ठानिक लोकनृत्य की श्रेणी में आते हैं। इन लोकनृत्यों में धार्मिक भक्ति भावना एवं सामाजिक तत्वों का समावेश होता है। सामाजिक आस्थायें और परम्परा के साथ जुड़ जाने से उनमें स्थायित्व आता है। इनमें समष्टिगत भावना की प्रबलता नजर आती है। उनकी भावाभिव्यंजनाओं में पर्वों का विवेचन होता है। इन नृत्यों का प्रेरक तत्व समाज विशेष की धार्मिकि आस्थायें और उन्हें प्रतिपादित करने का अनुशासन है। समाज के बदलते हुये परिवेश में ऐसे कई नृत्य धीरे–धीरे लुप्त होते जा रहे हैं।

1) जवारा नृत्य,
2) लांगुरिया नृत्य,
3) शेर नृत्य,
4) ढाल नृत्य,
5) कार्तिक नृत्य,
6) नौरता नृत्य,
7) बधाई नृत्य,
8) सैरा नृत्य,
9) मौनिया लोकनृत्य,
10) पाई डण्डा नृत्य,
11) गेड़ी नृत्य,
12) चांचर नृत्य,
13) मामुलिया नृत्य,
14) लखूरो नृत्य,
15) राई नृत्य।

3. श्रम के साथ होने वाले लोकनृत्य :–

ऐसे अनेक लोकनृत्य हैं जो धीरे–धीरे मनुष्य की क्रियाओं के साथ जुड़ गये हैं। श्रमजनित थकान तथा उसकी निरसता को कम करने के लिए जिन अनेक नृत्यों

की सृष्टि हुई है, वे मनुष्य के जीवन में घुल–मिल गये। सड़क कूदते हुये, पानी भरते हुये, वजन उठाते हुये तथा खेती की अनेक क्रियायें करते हुये, अनेक अंगमुद्रायें लय बद्ध होकर धीरे–धीरे नृत्य का रूप धारण करने लगती है। चूंकि इन नृत्यों में श्रम की प्रधानता रहती है, इसीलिए उनकी चालें, भंगिमायें तथा मुद्रायें अत्यन्त गौण हो जाती हैं। ऐसे नृत्यों में काम करती हुई स्त्रियों की टोकरियां और हिलते हुये हाथ ही नृत्य की भंगिमायें बन जाते हैं। ये नृत्य मुद्रायें श्रम में होने वाली क्रियाओं के साथ इस तरह घुल–मिल जाती हैं कि श्रम ही नृत्य बन जाता है और लय का आनन्द श्रम की थकान को महसूस ही नहीं होने देता।

4. जातिगत लोकनृत्य :–

बुन्देलखण्ड में अनेक जातियों की सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्ध हैं। इन अनेक जातियों में से कुछ जातियों ने लोकनृत्यों की परम्परा को आज भी बनाये रखा है तथा उन जातियों के लोकनृत्य उस जाति विशेश्ज्ञ की पहचान बन गये हैं।

1) कानड़ा नृत्य,
2) रावला नृत्य,
3) बरेदी नृत्य,
4) कछवाहा नृत्य,
5) कानड़ा नृत्य।

5. आदिवासी लोकनृत्य :–

आदिम सभ्यता और संस्कृति के धनी इन गौड़ व सौर जनजातीयों की अभिव्यक्ति इनके लोकनृत्य तथा लोकगीतों में मुखरित हुई है। लोकनृत्य इनके सांस्कृतिक व धार्मिक अवसरों को इंगित करने के साथ–साथ सम्पूर्ण जीवन में छाई मस्ती एवं कलात्मक झलकियों के सूचक हैं। बहुत प्रचीन समय से ही इन जातियों ने हिन्दू धर्म और संस्कृति के निर्माण में सहयोग दिया है। गौड़ व सौर जनजातियों में नृत्य करना जीवन का अंग है। शादी, त्यौहार, मेले के अतिरिक्त थोड़ी सी प्रसन्नता होने पर भी घर का आंगन नृत्य की थिरकन से सजीव हो उठता है। वह अपने सारे दिन की थकान को लोकनृत्य और गीत के माध्यम से दूर करते हैं।

1) शैतान नृत्य,   2) सुआ नृत्य।

बुन्देलखण्ड में महिलाओं द्वारा किये जाने वाले लोकनृत्य

बुन्देलखण्ड अपनी लोकनृत्य की परम्परा में बड़ा धनाड्य है। शताब्दियों से यह कलाओं का गढ़ रहा है। अतीत में बेंजुबावरा और तानसेन जैसे लोगों ने जन्म लिया है। यहां की महिलाएं का इतिहास भी गौरवपूर्ण रहा है। आजादी की लड़ाई में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को पूरा देश आज भी याद करता है एवं वीरांगना झलकारी बाई, सहोद्राराय एवं प्रवीण राय जैसी नृत्यांगना। वहीं ख्याल गायकी की सुप्रसिद्ध गायिका असगरी बाई आज भी लोककंठ में विद्‌यमान हैं।

महिलाएं पुरुषों के साथ खेतों में, खलिहानों में श्रम करती हैं और परिवार में वे तीज–त्यौहारों में अधिक भागीदारी करतीं हैं। पर्दा प्रथा हो जाने के कारण पुरुषों के साथ नृत्यों में कम भागीदारी करतीं है, फिर भी बुन्देलखण्ड में ऐसे लोक नृत्य हैं जिनमें महिलाएं भाग लेकर अपनी खुशियों का इजहार करतीं हैं। वे लोकगीतों के साथ लोकनृत्यों में भी प्रधानता से भाग लेतीं हैं।

लोकनृत्यों में महिलाओं की खुशियां नाच उठती हैं। वे देवी के समक्ष अथवा विवाह, पुत्र जन्मोत्सव पर नृत्य करतीं हैं। इनमें प्रमुख नृत्य है –

1) नौरता नृत्य,
2) कार्तिक नृत्य,
3) लांगुरिया नृत्य,
4) बधाई नृत्य,
5) मामुलिया नृत्य,
6) राई नृत्य,
7) शैताम नृत्य,
8) सुआ नृत्य।

नौरता लोकनृत्य

बुन्देलखण्ड में वर्षा ऋतु समाप्त होते ही विवाहित बालायें सावन–भादों के त्यौहार मनाकर अपनी–अपनी ससुराल लौटने लगती हैं और किशोरी कन्याओं की क्वांरी आंखों मं सजीले, वीर युवक के सपने तिरने लगते हैं। एक माह बाद ही देवोत्थान एकादशी को सोये देवता जगने वाले हैं। बुन्देलखण्ड में इसी के बाद तिलक और विवाहों के आयोजन शुरू होने लगते हैं। देवताओं के साथ–साथ अपनी भी सोयी किस्मत जागने के प्रयास में बुन्देलखण्ड की बालिकायें गौरा रानी की भांति शिव की आराधना शुरू कर देती हैं, उन्हीं जैसा शांत, सरल, औघड़ पर आवश्यकता पड़ने पर प्रयलंकारी स्वरूप तेजस्वी पुरुष पाने के लिये। इन सुनहरी आकांक्षा से युक्त किशोरियां सूर्योदय के पूर्व स्वच्छ आकाश के नीचे, श्वेत धवल नदियों की करधनी पहने व वनस्पिति और पुष्पों से श्रृंगारित बुन्देली धरा के लिये पुते चबूतरों पर बुन्देलखण्ड में सर्वत्र पाये जाने वाले श्वेत बटईयों के अर्थात् दुद्दी के चूरे के रंग–बिरंगे कलात्मक चौक उकेर कर मानों दुल्हन रूपी पृथ्वी के माथे पर खोर निकालती हैं। इसके बाद मिलन और विछोह, स्वछंदता और बंधन से युक्त सुख–दुख की अपूर्व मिश्रित अनुभूतियों को लिये उनके कोमल कंठों से निकले एक के बाद एक गीत हृदयतंत्री को झकृत कर मधुर टीस से भर देते हैं।

शौर्य और बलिदान की अमर गाथाओं से भरी बुन्देलखण्ड की इस रमणीक धरा पर खेला जाने वाला सुअटा का यह खेल कुंआरी बालिकाओं का एक महत्वपूर्ण त्यौहार है, जो आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवरात्रि तक ऊषाकाल में खेला जाता है। नवरात्रि में नौ दिन तक खेले जाने वाले इस खेल को नौरता भी कहते हैं। बुन्देलखण्ड में इस खेल की उत्पत्ति के संबंध में अनेक तरह की लोक कथायें और किवदन्तियॉ प्रचलित हैं।

एक लोक कथा के अनुसार सुअटा नामक एक दैत्य था, जो कुंआरी बालिकाओं का अपहरण कर उनसे विवाह रचाता थ। उसके अत्याचार से पीड़ित होकर कन्याओं ने दुर्गा मां की शरण ली और उनका व्रत रखना आरम्भ किया। उनकी

आराधना से प्रसन्न होकर दुर्गा ने दानव का वध किया, तभी से कन्यायें सुअटा का यह व्रत बराबर मनाती आ रहीं हैं। इससे यह भी मान्यता है कि नौरता का यह उत्सव नवरात्रि का ही दूसरा रूप है जिसे बालिकाओं ने तोड़मरोड़ कर अपने मन के अनुकूल बना लिया है। नौरता शब्द ही नवरात्रि से बना है।

एक अन्य कथा है कि हिमांचल राजा की कन्याओं को सुअटा नामक राक्षक खा जाता था, जिससे वे अत्यंत दुखी थे, किसी ब्राह्मण के सुझाव पर कि कुंआरी लड़कियां नौ दिन तक इस राक्षक की पूजा करें तो वह प्रसन्न हो जायेगा और लड़कियों की रक्षा हो सकेगी।

राजा ने ब्राह्मण की आज्ञा मानकर सारे गॉव में पूजा करने का आदेश दे दिया और राजा हिमांचल के आदेश से तभी से सारे बुन्देलखण्ड में सुअटा का व्रत रखा जाने लगा।

सुअटा से संबंधित एक कथा यह भी प्रचलित है कि महाभारत के युद्ध में घटोत्कच्छ का पुत्र बर्बरीक युद्ध करते हुये मृतावस्था को पहंच गया। उस समय कृष्ण भगवान ने बर्बरीक से पूछा, तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है? उसने कहा कि एक तो मेरा विवाह करने की तीव्र इच्छा है, मैं बिना विवाह किये हुये ही मरा जा रहा हूँ। दूसरी इच्छा है कि मैं महाभारत का पूरा युद्ध अपनी आंखों से देखूं। कृष्ण भगवान ने कहा कि तुम्हारी दोनों इच्छाएं पूरी होंगी। आगे कलयुग में संसार की जितनी भी कुंवारी बालिकायें हैं, उन सभी जाति की सारी कन्याओं से तुम्हारा विवाह होगा। इस प्रकार कुछ लोगों की मान्यता है कि सुआटा में कुंवारी लड़कियों का विवाह सुअटा (बर्बरीक) से होता है, और दीवाल पर जो सिर पर साफा बांधे, हाथ में ढाल तलवार धारण किये युद्ध की साज–सज्जा से युक्त पुरुष आकृति बनाई जाती है, वह बर्बरीक की ही है, जो अत्यन्त बलशाली और देवी का परम भक्त था। दूसरी इच्छा पूरी करने के लिए कृष्ण भगवान ने बर्बरीक का सिर काटकर युद्ध स्थल के पास ही एक पर्वत शिखर पर रख दिया, जहां से वह महाभारत का युद्ध देखता रहा। यही सिर टेसू के रूप में प्रचलित है।

लोकमुख में यह बर्बरीक बभ्रुवाहन हो गया है। वास्तव में यह अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन नहीं है, बल्कि घटोत्कच्छ का पुत्र बर्बरीक है। महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में कृष्ण ने बहुवाहन का नहीं अपितु देवी भक्त ब्रह्मचारी बर्बरीक का मस्तक अपने तीखे चक्र से काट गिराया था और भक्त का मस्तक होने के कारण उसे अजर–अमर बना दिया था। बर्बरीक के पुनर्जीवित मस्तक ने ही महाभारत के युद्ध देखने की इच्छा प्रकट की थी। संक्षिप्त स्कंद पुराण के माहेश्वरखण्ड–कुमारिकाखण्ड में बर्बरीक संबंधी इस उल्लेख का विवरण मिलता है।

देवी का परम भक्त होने के कारण ही सम्भवतः बर्बरीक देवी दुर्गा की आराधना करने वाली कन्याओं के द्वारा अधिक पूज्यनीय हुआ और शायद इसलिए शिव–पार्वती के साथ ही दीवाल पर देवी के इस भक्त की मूर्ति बनाकर इसकी भी पूजा की जाती है।

यह बर्बरीक और बुन्देलों का प्रतीक भी हो सकता है, जो देवी के भक्त होते थे और अपनी स्वतंत्र सत्ता के लिए मुगलों से सतत् युद्धरत रहे। बुन्देली बालाओं के लिए ऐसे वीर बुन्देलों की वर रूप में कामना सहज स्वाभाविक ही थी।

बुन्देलखण्ड में नौरता या सुअटा का यह लोकोत्सव जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कुंआरी बालिकाओं का त्यौहार है। इस लोकोत्सव के बारे में प्रचलित अनेक तरह की किवदंतियों में राक्षस की परिकल्पना कन्याओं के विवाह में अड़चन डालने वाले खेलों के लिए की गई है और देवी का आवाहन विघ्न–बाधा उत्पन्न करने वाले इन दुष्टों के शमन के लिए आवश्यक समझी गई है।

प्रारम्भ से ही हिन्दु समाज में कन्या का विवाह विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म दे रहा है और परिवार की सतत् चिंता का कारण रहा है। उस युग में भी जबकि स्वयंवर की प्रथा थी, कन्या द्वारा वन चुन लिये जाने के बद चुने हुये वर के साथ उस कन्या से विवाह की इच्छा रखने वाले अन्य युवक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे, और चुने हुये वर के पराजित हो जाने की स्थिति में वह प्रायः अपने मनोनुकूल वर को प्राप्त करने से वंचित ही रह जाती थी। ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी तक आते–जाते तो कन्या को लेकर तलवारें खिंचना आम बात हो गई थी। उस समय

तो हाल यह था कि ''जिहि की बिटिया सुन्दर देखी तिहि पर जायें धरे हथियार'' और आज के आर्थिक युग में धनाभाव के कारण लड़कियों की कैसी बलि चढ़ रही है, कहने की आवश्यकता नहीं है। कहना न होगा कि इस खेल की किंवदंतियों में उपस्थित राक्षस बालिकाओं के विवाह में आने वाले विभिनन विघ्नकारी तत्वों का प्रतीक ही है। वर्तमान संदर्भ में जबकि नारी–शोषण एवं उत्पीड़न असहनीय स्थिति तक जा पहुंचा है और दहेज रूपी राक्षस निरन्तर अपना मुंह फाड़ता चला जा रहा है, तब इस खेल का सामाजिक प्रतीकात्मक महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है। नौरता कन्याओं द्वारा गौरी का पूजन है जिसके फलस्वरूप वे विभिन्न प्रकार के दानवों को नष्ट करने योग्य शक्ति अर्जित कर लेतीं हैं।

नवरात्रि के कई दिन पूर्व से कन्यायें सुअटा खेलने की तैयारी में जुट जाती हैं। वर्षा की धुली हुई श्वेत बटईयों को इकट्टे करके पीसती हैं। इस दुद्दी के चूर्ण से ही चौक पूरे जाते हैं। इन चौकों के बीच में रंग भरने के लिए दुद्दी या जलाने वाली लकड़ी के घुन के लाल, हरे, नीले, पीले, कत्थई आदि रंग बनाये जाते हैं।

परवा के एक दिन पहले मुहल्ले के किसी एक घर के बड़े चबूतरे पर मिट्टी का हिमालय पर्वत बनाकर उसमें सीढ़ियां लगायी जाती हैं। पर्वत के ऊपर ढाल तलवार लिए दैत्य आकृति की एक मिट्टी की मूर्ति बनायी जाती है, ऐसी मान्यता है कि इन कौड़ियों से जुआ खेलने वाला व्यक्ति जुए में जीतता है। इसलिए अधिकांशतः इसकी आंखों और नाभि की कौड़ियां जुआड़ियों द्वारा चोरी कर ली जातीं हैं।

जुआ राक्षस वृत्ति का परिचायक है, यहां एक राक्षस को दूसरे राक्षस का साथ मिल जाने से बल में वृद्धि की व्यंजना है। इस दैत्याकृति के दोनो ओर सूरज चंदा बालिकाओं के भाई के रूप में प्रतिष्ठित किये जाते हैं और नीचे दो दिये गाड़ कर दुग्ध कुण्ड बनाये जाते हैं। उत्सव की समाप्ति पर बालू का भूत बना कर मिटाया जाता है।

प्रतिपदा के दिन सभी बालिकायें तालाब पर स्नान करने जातीं हैं, और अज्जा झारे के झौर से अपने–अपने सिर पर पानी ढारती हुई, शिव–गौरी के पूजन का व्रत लेतीं हैं। इसे बुन्देलखण्ड में कॉय चढ़ाना कहते हैं।

कॉय चढ़ाने के लिए वे सस्वर गातीं जाती हैं :–

अज्जा झारौ झारियो, पवार कॉय चढ़ाइये।

यहां यह बताना उचित होगा कि अज्जा बारे और पवार के पौधे बुन्देलखण्ड में इसी ऋतु में उपलब्ध रहते हैं।

मंजूलता सेन, सागर ने बताया कि स्नान करने के बाद कन्यायें सुअटा के लिये पुते चबूतरे पर आतीं हैं और हिमालय पर्वत की सीढ़ियों पर मिट्टी की गौरैया बनाकर रखतीं हैं, जिन्हें कॉय कहा जाता है। लकड़ी की पांच कॉय और लड़के की सात कॉय रखी जाती हैं। मिट्टी के बने हिमालय पर्वत पर या उसके सामने शिव–पार्वती की मिट्टी की मूर्ति रखकर बालिकायें चबूतरे के चारों ओर रंग बिरंगे कबूंरे बनाकर चौक पूरतीं हैं। प्रतिदिन सुअटा का आवाहन किया जाता है और उसके आने के लिए गैल लीप दी जाती है तथा उसमें रंग बिरंगे चौक पूर दिये जाते हैं।

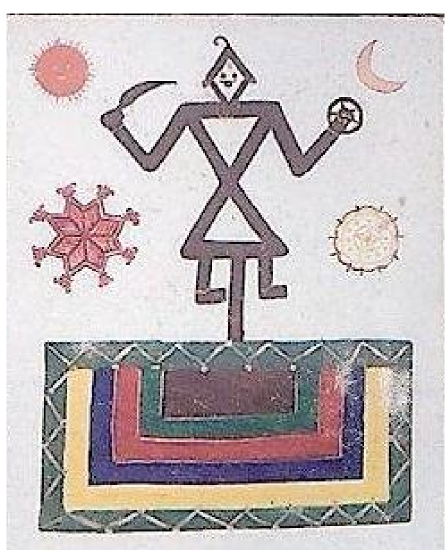

इसके उपरांत दूर्वादल की सहायता से कन्याओं के समूह की सबसे बड़ी कन्या दुग्ध कुण्ड से दुग्ध लेकर अर्ध्य छिड़क कर कॉय डालती जातीं है। बचा हुआ दूध पड़ा को पिला दिया जाता है। यह पड़ा निम्न जाति के किसी बालक को बनाया जाता है। इस अवसर पर बालिकायें जो गीत गातीं हैं वह हिमांचल और उनकी प्रिय पुत्री गौरा रानी के नाम पर ही है, उसमें कब से स्थान–स्थान पर सुअटा में भाग लेने वाली बालिकाओं तथा उसके पिता के नाम मिल दिये जाते हैं।

हिमांचल जू की कुंवर लड़ायती नारे सुअटा,
गौरा बाई नेरा तेरा नॉय।

नेरा तो अन्हईयों बेटी नौ दिना नारे सुअटा,
दसयें खौ करियों सिंगार।

दसये खौ दसरा जीतियो नारे सुअटा,
बिसयें दिवारी होय। (मंजूलता सेन, सागर)

हिमांचल की लाड़ली पुत्री देवी पार्वती का सब नमन् करतीं हैं और नौ दिन तक नौरता का व्रत रखती हैं। इसके दसवें दिन दसहरा होता है। इस दिन शस्त्र पूजा करने के बाद क्षत्रिय यात्रा पर निकल जाते थे। दशहरे के बीसवें दिन दिवाली होती है अर्थात् सर्वप्रथम शक्तिदायनी पार्वती का पूजन होता है, उसके बाद सम्पत्ति दायनी लक्ष्मीजी का पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् देवोत्थान एकादशी से शक्ति एवं सम्पत्तिस्वरूपा कन्याओं के विवाह प्रारम्भ हो जाते हैं। फिर कन्यायें शिव–पार्वती की आरती उतारती हुई गातीं हैं :–

झिल मिल हो झिल मिल तेरी आरती।
महादेव तेरी पारती को बाऔ नौंनी।

चंदा बाऔ नौनी, सूरज बाऔ नौनी।
नौने सलौने भौजी, कंत तुमाये।

कंत तुमाये भौजी, बिरन हमाये।
झिल मिल हो ....

आरती के पश्चात् बालिकायें किसी एक जाति के फूल अपने हाथ में ले लेती हैं, फिर सब मिल कर गाती हैं।

मोरी गौरा मांग धतूरे के बन्ना
सो कहां पाहों रे लाल।

मोरे भैया भतीजे,
हाटे गये हैं,

पाटे गये हैं,
कारीले कुंजल,

चौक बसन्ते,
ले मौरी गौरा, लेब महादेव,

जो तुम मांगो सोई चढ़ैहों।

कन्याओं ने शंकर–पार्वती की साधना का व्रत लिया है। साधक अपने आराध्य को प्रसन्न करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है। इसलिए उनके आराध्य जो चाहते हैं, वही वे उन्हें भेंट करती हैं। साधना सूर्यादय के पूर्व करने पर ही अधिक फलीभूत होती हैं। इस समय मन को एकाग्र करने में अधिक सफलता मिलती है। दिन निकलने के बाद तो दैनिक कार्यकलापों की चिन्ता लग जाती है। बालिकायें भी अपना पूजन सूर्योदय के पूर्व चन्द्रमा के प्रकाश में ही शुरू कर देती हैं।

जौ के फूल तिली के दाने।
चंदा ऊंगे बड़े भुनसारे।

ऊंगन न होय बारो चंदा।
हम धर होय लिपना पुतना।

सास न होय दैहे गरियां।
ननद न होय कीसे बिरना।

माई को कही न करिहौ।
बाबुल को कहा ना कहिहौ।

पानी की खेप न धरिहौं।
गोबर की हेल न धरिहौं।

चकिया को डंडा न पकरिहौं।
तवां पै कुचइया न धरिहौं।

बासी को कौन न दैहों।
ताती होय तो लप–लप खैहों।

उपर्युक्त गीत में जहां ग्राम्य बन्धुओं के दैनिक जीवन का चित्र उभरता है, वहीं दूसरी ओर पितृ गृह में कन्याओं की स्वतंत्रता बाल जन्म हठ एवं अल्हड़ता की अनुपम झलक मिलती है। यह गीत उनकी भक्ति की तल्लीनता का भी परिचायक है। कन्याओं ने नौ दिन का व्रत लिया है। अतः वे न तो अब कोई काम करेंगी और न ही बासा–कूसा खायेंगी, पूरी तल्लीनता के साथ वे शिव–पार्वती की तपस्या करेंगी। यहां सास–ननद तो हैं नहीं, जो बुरा भला कहें, गालियां दे और कोसें। यहां पर तो वे पूर्ण स्वतंत्र हैं।

खेल लो बेटी खेल लो नारे, सुअटा माई बाबुल के राज।
जब दुर जैहों बेटी सासुरे, सास न खेलन देय।

रात पिसावों पीसनो, बेटी दिवस गुबर की हेल।

जो बेटी इतने लाड़ प्यार से पाली पोसी जाती है। ससुराल में जाकर वह कोल्हू के बैल कीतरह जुत जाती है। यदि बेटी दूर ब्याही गई तो फिर मॉ की चिन्ता

और अधिक बढ़ जाती है। उनकी लाड़ली को इतनी दूर लिवाने कौन जायेगा। वह अपनी बेटी को जी भरकर देखने को भी तरस जायेंगी :–

देरा के देसा दई है गौरा बेटी, दई है सबई बेटी।
को बेटी तोहि लिवावन जैहें, बुलावन जैहें।

बहिनों को अपने भाइयों का बड़ा गर्व होता है। गर्व हो भी क्यों न? मॉ–बाप के बाद भाई ही तो है, जो पूरी उम्र सुख–दुख में उनका साथ देते हैं। बेटी अपनी मॉ को सांत्वना देती हुई कहती है कि ये सूरज और चांद की तरह तेजस्वी, वीर और लोक सेवा में तत्पर दोनों छोटे भाई अपने नीले घोड़े कुदाते–फंदाते हाथ में लाल छड़ी चमकाते, रास्ते में लोक सेवा के कार्य करते हुये अपनी बहिन को लिवाने जायेंगे।

मोरी पिठी के भैया चंदामल भैया सूरजमल भैया,
जे दोऊ भैया मॉ के जाये बहिन के खिलाये,

लिवावन जैहें बुलावन जैहें।
सिर गोला पाग सेवारत जैहैं, पियरे पट पहनावत जैहैं।

लीली सी घोड़ी कुदावत जैंहैं, लाल छरी चमकावत जैहैं।
वन की चिरैयां चुगावत जैहैं, उखटे बाग लगावत जैहैं।

नंगी डुकरियां ओढ़ावत जैहैं, भूखी डुकरियां जिमावत जैहैं।
कुंवारी सी कन्या विवाहित जैहैं, ब्याही सी बिटिया चलावत जैहैं।

दूर ब्याहे जाने पर बेटी अपनी चिन्तित माँ को तो सांत्वना देती है, पर स्वयं मायके से अधिक दूर जाने की कल्पना मात्र से ही वह बैचेन हो उठती है, और अपने बाबुल से मिन्नत करती है :—

ए बाबुल दूरा जुनइया जिन बइयो, सो को हो रखाउन जाय।
ए बेटी तुमई हंमाई लाड़ली, सो तुमई रखाउन जाव।।

ए बाबुल नाय सें जातन जाड़ो लगत है, मॉय से आउतन घाम।
कै बेटी मोरी मॉय लगा देउँ इमली अम्मा, नाूय भरा देउँ रजइया।।

कै बाबुल दूरा जुनइया ....
कै बाबुल नांय से जातन भूक लगत है, मांय से आउनत प्यास।

कै बेटी नांय से जातन पुरी पका देउँ, मॉय खुदा देउँ बेला ताल।।
कै बाबुल दूरा जुनइया ....।

पर जब बाबुल उसका आशय नहीं समझते हैं तो वह और अधिक स्पष्ट शब्दों में पूछती है :—

कै बाबुल कोना लिख दये घरई कें अंगना, किया लिखे परदेस।

तब फिर बाबूल भी अपनी लाड़ली के परदेस ब्याह कर चले जाने की याद करके दुखी हो उठते हैं, और कहते हैं :—

कै बेटी भइया भुजाई खौं घरई के अंगना, मुमैं लिखे परदेस।

पहले लड़के—लड़की का संबंध नाई, ब्राह्मण करवाते थे। अतः उनका सारा आक्रोश नाई, ब्राह्मण पर ही निकलता है :—

कै बेटी मरै बो नउआ मरै बो बमना करम लिखे परदेस।

पिता को विकल देख बेटी माँ की ही भांति अपने पिता को भी धीरज बंधाती हुई कहती है :—

कै बाबुल ना मरै वो बमना ना मरै वो नउवा करम लिखे परदेस।
कै बाबुल कगदा होय तो बांचियो, करम न बांचे जांय।

कै बाबुल कगला होय तो पाटियो, करम न पाटे जांय।
कै बाबुल दूरा जुनइया ....।

कै बाबुल धन होय तो बांटियो, करम न बांटे जांय।
कै बाबुल दूरा जुनइया ....।

उपर्युक्त पंक्तियों में माता–पिता तथा बेटी की मनोव्यथा का कारुणिक चित्रण मिलता है। बेटी का संबंध अभी कहीं तय नहीं हुआ है। पर उसका संबंध अपने गांव से दूर कहीं परदेस में होने की संभावना तो है ही। इसी संभावना की कल्पना मात्र से ही वे व्यथित हो उठते हैं।

जब व्यक्ति सब ओर से हताश और निराश हो जाता है, और उसे सामने कोई स्पष्ट रास्ता नजर नहीं आता। तब भाग्य ही एक ऐसा आश्रय स्थल है जहां क्षण भर ठहर कर वह अपनी व्यथा को भुलाने का प्रयास करता है। इस गीत की आखिरी पंक्तियों में इसी भाग्य का सहारा लेकर बेटी अपने बाबुल की विह्वलता को कम करने का प्रयास करती है।

कुछ दिनों बाद कन्या का विवाह हो जाता है और वह ससुराल चली जाती है। उसके भाई चंदा और सूरज अपनी प्यारी बहिन को लिवाने जाने के लिए तैयार होते हैं। उनको यात्रा की तैयारी करते हुये देखकर मॉ–बेटों को रोकती है :–

सूरज की मैया जा कहैं नारे सुअटा,
मोरे सुरज बिदेसे न जाव।

पहले आवागमन के साधन आज की तरह सहज और सुलभ नहीं थे। केवल घोड़ा, बैलगाड़ी, शिकरम आदि ही थीं, जिनके द्वारा साधारणतया यात्रायें की जाती थीं। सड़कें भी आज की तरह बहुतायत में नहीं बनी थीं। रास्ते में बीहड़ जंगल, पहाड़, नदी, नाले पड़ते थे। हिंसक जीव–जन्तुओं का भय रहता था। संचार के कोई साधन न होने के कारण कोई दुर्घटना हो जाने पर तुरन्त कोई खबर मिलना मुश्किल थी। फिर उन्हें अपनी बहिन की ससुराल के गांव का रास्ता भी नहीं मालूम था, क्योंकि वे पहली बार अपनी बहिन को लेने जा रहे थे।

इसलिये यद्यपि पुत्री को देखे बहुत दिन हो गये हैं, पर मां की ममता अपने बेटों की जान जोखिम में डालने का खतरा मोल लेने देना नहीं चाहती।

पर बालिकाओं के ये भाई तो सूरज, चांद की तरह हैं। कोई कायर, कमजोर, साधारण तो हैं नहीं, जो मॉ के रोकने पर अपनी प्यारी बहिना को लिवाने जाने से रुक जावे। वे घोड़ों पर सवार होकर चल देते हैं :–

सूरजमल के घुड़ला छूटे।
चंदामल के घुड़ला छूटे।

अमुक जू के घुड़ला छूटे।
सब भैयन के घुड़ला छूटे।

अपने–अपने भाईयों का नाम लेकर गीत को आगे बढ़ाया जाता है :–

चरन चन्देरी जै हैं।
पियन पिरागै जै हैं।

लरन महोबे जै हैं।
पान खान पाताले जै हैं।

(श्रीमति रामकली देवी, सागर)

उनके निराले भाइयों के घोड़ों की शान भी निराली ही है। वे चरने तो चन्देरी जाते हैं और पानी पीने प्रयाग जाते हैं। अपनी जन्मभूमि महोबा की रक्षा करने को लड़ने जाते हैं और पान खाने पाताल जाते हैं।

भाई रास्ता तय करते हुये एक गांव में पहुंचते हैं। उस गांव में एक कुएं पर कुछ स्त्रियां पानी भर रही थीं। वहीं ये लोग भी आ जाते हैं। चूंकि वे इसके पहले कभी अपनी बहिन की ससुराल नहीं आये थे, इसलिये पूंछते–पूंछते जा रहे थे। इन स्त्रियों से पूछने पर मालूम पड़ता है कि यही उनकी बहिन की ससुराल का गांव है। कुंए पर पानी भर रहीं स्त्रियां एक दूसरे से परिहास करने लगती हैं। ननद उन्हें अपनी भाभियों का भाई बताती हैं, तो भाभियां अपनी ननदों का ननदोई कहती हैं।

इसी हंसी ठिठोली के बीच एक प्रौढ़ा की नजर उन दोनों पर पड़ती है। वह एक नवयुवती से कहती है, मुझे तो ये पथिक रूप रंग में तुम्हारे भाई जैसे लगते हैं। जरा देखो तो। अब उस नव युवती के नेत्र यात्रियों के उस समूह में अपने भाइयों को खोजने लगते हैं :–

चौकन चौकी चौखुटी नारे सुअटा, चौकी के चारऊ खूंट।
चौकन बैठे भइया डेढ़ सौ नो सुअटा, तिनमें भैया चंदा सूरज कौन।

उस समूह में युवती के नेत्र इन दोनों पर ठहर जाते हैं। वह उन्हें देखकर भ्रमित सी हो जाती है। भाईयों को उसने बहुत दिनों से नहीं देखा था, जब वह ससुराल आई थी तब उसके भाई बहुत छोटे थे। अतएव ठीक–ठीक पहचान करना उसके लिये मुश्किल हो जाता है। उसे अपनी हंसी उड़ने का भी डर है। लेकिन फिर भी वह साहस करके पथिकों से कहती है :–

लाल पाग कारी ढाल के नारे सुअटा,
लीली घुड़ल असवार।

चंदा सूरज भैया दोऊ खड़े नारे सुअटा,
पकरे लौंग की डार।

लीली जो बांधो भैया लौंग से नारे सुअटा,
घरियक धामों बिलमाओ।

उसके मुख से भैया शब्द सुनकर उन्हें अपनी बहिन की याद विकल कर देती है, वे कहते हैं :–

हम कैसे घामों बिलमाइये नारे सुअटा,
जिनकी बहिन परदेस।

अंत में बहिन अपने भाई को पहचान लेती है, और घर लिवा जाती है।

इन गीतों में कन्या के बाल्य जीवन, उसके ससुराल न जाने, मायके से विछोह, भाई बहिन के पारस्परिक स्नेह आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है।

चतुर्थी के दिन बुल्किया (विवाह का मड़वा रंगने वाले चितेरे) के यहां से पूरे श्रृंगार सहित गौरा रानी की प्रतिमा लायी जाती है। चार दिन तक नित्य शिव–पार्वती की नई माटी की मूर्ति का पूजन किया जाता है, पर पंचमी से इस प्रतिमा का विधिवत पूजन शुरू हो जाता है।

पूजन करके कन्यायें गाती हैं :–

अपनी गौर की झाई देखो।
का पैरें देखो।

माथे पै बीजा देखो।
माथे बेंदिया देखो।

कानन झुमकी देखो।
कानन झेला देखो।

नाक बेसर देखो।
नाक नथनी देखो।

गरै ठुसी देखो।
गरे बिचौली देखो।

कमर करधनी देखो।
बाहन बाजू देखो।

हाथै पौंची देखो।
पायन पायजेब देखो।

नुगरियन बिछुआ देखो।
करया जोरो देखो।

मुंड़ से लुंगरो देखो।
गोद लड़का देखो।

गोद बिटिया देखो।

कन्याओं ने गौरा रानी की झांई सी देखी अर्थात् उन्हें सपने में देखा, उस सपने में उन्होंने गौरा रानी को जिस रूप में, जिस साज–सज्जा और आभूषणों से युक्त देखा उसी का वर्णन कन्यायें आपस में इस लोकगीत में विस्तार से करती हैं।

फिर वे आपस में विचार करती हैं, कि उन्होंने स्वप्न में गौरी को जिस प्रकार शिख से लेकर नख तक आभूषण धारण किये हुये मातृत्व की छटा बिखेरते हुये देखा, वही सब वे उन्हें अर्पण करेंगी।

गौर मांगे इंजा।
मैं चढ़ाऊॅ बीजा।

गौर मांगे ऐंदा।
मैं चढ़ाऊॅ बैंदा।

गौर मांगे ऐसर।
मैं चढ़ाऊॅ बेसर।

आगे इसी तरह लड़के और लड़की तेक गीत चलाता है। अंत में वे कहती हैं :–

गौर मांगे न कछू, मैं चढ़ाऊॅ सब कछू।

उपर्युक्त पंक्तियों में कन्याएं परोक्ष रूप से एक–दूसरे के लिए सुखी–समृद्ध और मातृत्व से परिपूर्ण जीवन की कामना करती हैं।

इसके बाद लड़कियॉ गाती हैं :–

पराई गौर कौ झाई देखो, का पैरें देखो।
नाक से नकटी देखो, कानन बूची देखो।

हाथन लूली देखो, पाउन लंगड़ी देखो।
करया लचकी देखो, गोबर करतैंई देखो।

पानी भरतन देखो, बिन मइया के देखो।

गौरा रानी के उपर्युक्त गीतों के माध्यम से नारी के उस सहज, सुलभ, ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है, जिसमें वे अपनी कन्याओं की श्रेष्ठता, समृद्धता, कुलीनता और अतुलित सौंदर्य का वर्णन कर दूसरे की कन्याओं को उनसे हेय दर्शाकर लड़के वालों को अपनी लड़की की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं।

अष्टमी के दिन सुअटा का व्रत माना जाता है और सांझ की बेला में सुअटा खेला जाता है। उस दिन बालिकाएं तरह–तरह की भोजन सामग्री बनाकर लाती हैं, और गौर को अर्पण करके फिर प्रसाद रूप में एक–दूसरे को बॉट कर यह कहती हुई खाती हैं

हमाई गौर को पेट पिरानी भसकूं।

संभवतः लड़कियां नव विवाहित बालिकाओं के साथ बच्चे होने की ठिठोली करती हैं। अष्टमी के दिन सायंकाल जो बालू का भूत बनाया, मिटाया जाता है। वह एक ओर तो पार्वती के विवाह में शंकर जी की बारात में आये भूत–प्रेतों का प्रतीक है, पर दूसरी ओर उसका मिटाया जाना इस बात की ओर संकेत करता है कि

महिषासुरमर्दिनी की आराधना कर वे उन्हीं के अनुरूप दानवों को मारने योग्य शक्ति अर्जित कर लेती हैं। इस दिन सुअटा खेलने वाली बालिकायें रात्रि जागरण करती हैं। यह जागरण नाच–गाने के साथ व्यतीत करती हैं।

इस अवसर पर ढ़िरिया मांगी जाती है जिसमें नृत्य और गायन साथ–साथ चलता है। ढिरिया मांगने के लिए वे एक मिट्टी का घड़ा लेती हैं, जिसमें नौ या गयारह छेद किये जाते हैं। आधे घड़े तक राख भर दी जाती है और उस राख पर मीठे तेल का एक दीपक जलाकर रख दिया जाता है। घड़े के छिद्रों से जलते हुये दीपक का प्रकाश चारां ओर निकलता है। इसे ढ़िरिया या झंझरी कहा जाता है। एक बालिका उसे सिर पर रखती, बाकी सब बालिकायें सर्वप्रथम गौरा रानी के सामने गीत गाती एवं नृत्य करती हैं।

फिर यह झंझरिया खेल में सम्मिलित प्रत्येक कन्या के यहां तो ले ही जाई जाती है, परन्तु इसे मोहल्ले के प्रत्येक घर में भी ले जाया जाता है। जिस कन्या के सिर पर झिरिया रखी होती है वह आगे–आगे चलती है। पीछे सब बालिकायें निम्न गीत गाती हुई चलतीं हैं :–

पूंछत पूंछत आये हैं, नारे सुअटा,
कौन बड़े की पौर।

पौरन बैठे भैया पौरिया नारे सुअटा,
खिड़किन बैठै कुतवाल।

पौरन के भैया सो गये नारे सुअटा,
जाग रह कुतवाल।

बड़े अटारी बड़े ढवा नारे सुअटा,
बड़ेई तुम्हारे नाम।

गज मोतिन के झुमका नारे सुअटा,
लटके पौर द्वार।

निकरौ दुलइया रानी बाहिरे नारे सुअटा,
बिटियन होत अबेर।

हम कैसे निकरे बइया बाहिरे नारे सुअटा,
ओलियां झलूरे पूत।

तुम जिन जानो भौजी मांगने नारे सुअटा,
घर घर देत असीस।

माई बबुल की लाड़ली नारे सुअटा,
पीये कबचुलन दूध।

पूता जो पारे भौजी पालने,
बिटियन अच्छत देव।

लै अच्छत भौजी निग चली नारे सुअटा,
चंदन रिपटे पांव।

चंदन रिपटी भौजी भौं गिरी नारे सुअटा,
अच्छत गए बगराय।

जितने अच्छत भौजी भौं परै नारे सुअटा,
उतने दुलइया तोरे पूत।

दुधन पूतन भौजी घर भरै नारे सुअटा,
बहुअन भरै खिचड़ी तेल।

तिलिया को तेल डड़ायनों नारे सुअटा,
कुल बहू चली रिसाय।

लौटो लौटो कुल बहू नारे सुअटा,
बड़े ससुर जू को नाव।

प्रत्येक घर के सामने ढ़िरिया पहुॅचने पर बारम्बार यही गीत गाया जाता है। जिसके घर ढिरिया पहुंचती है, वह अपनी सामर्थ और श्रद्धा के अनुसार रुपया, अनाज इत्यादि अवश्य देता है। बालिकाओं को कोई भी बिना दिये नहीं लौटाता है। इस तरह बहुत सा चंदा इकट्ठा हो जाता है। इसको बालिकायें नौरता पर ही नौंवी के बाद सामूहिक रूप से भोजन करने में व्यय करती हैं। अनाज आदि को बेचकर उसका रुपया भी इसी चंदे में इकट्ठा कर लिया जाता है। एकत्रित चंदे के अनुरूप ही भोजन

सामग्री मंगाकर तैयार की जाती है। यह भोज भी हास–परिहास के साथ चलता है। पत्तलें परोसी जा चुकने के बाद सभी खाते–खाते कहती जाती हैं :–

मेरी गौरा चली वन रूठ, बरेदी भैया हप्पू।
मेरी गौरा कौ पेट पिरानौ, बरेदी भैया हप्पू।

नौवीं खेल का अंतिम दिन होता है। इस दिन प्रातःकाल बालिकायें तालाब पर जाकर सिर धोकर नहाती हैं और कॉय उतारती हुई फिर दुहराती है :–

अज्जा झारो झारियो, पवार कॉय उतारियो।

कॉय उतार कर वे आज अपने व्रत की समाप्ति करती हैं। वहां से आकर नौ मिट्टी के दियों में मीठे, नमकीन पकवान रखती हैं। लीप कर गौर के सामने चौक पूरती हैं, चौक पर पटा रखकर गौरी–शंकर को विराजमान करके पूजन–हवन करती हैं। गौरी की आरती उतार कर प्रणाम करके नौ दिन में यदि उनके अनुष्ठान में कोई भूल–चूक हो गई हो उसके लिए क्षमा मांगती हैं, और भेंट करती हैं। इस समय बड़ी बूढ़ी औरतें निम्न गीत गाती हैं :–

ऊँची डगर की पीपरी, नारे सुअटा,
जिन तरैं लगी है बाजार।

बिरिजी गौरा रानी पाट खौं, नारे सुअटा,
राजा बाबुल पाट भराओ।

लगन दो बेटी मेरी हाटोली, नारे सुअटा,
बैठन दो पटवा दुकान।

लग गई बाबुल मेरी हाटोली, नारे सुअटा,
बैठ गई पटवा दुकान।

चुनरी रंगा दो पक्के पाट की, नारे सुअटा,
जामें जनम सफल हो जाय।

चुनरी न ओढ़े बाबुल कच्चे पाट की, सुअटा,
बूंद परै रंग जाय।

ढिंग ढिंग लिखियो मोरी मायको, नारे सुअटा,
अचरन माई के बोल।

माई बैठी मुझधरा, नारे सुअटा
बाबुल पौर दुआर। (मीरादेवी मिश्रा, बीना)

रास्ते में जो ऊँचा पीपल का पेड़ है, उसके नीचे हाट लगी है। गौरा बेटी पिता से हठ करती है कि उसकी चूनरी रंगवा दो। चुनरी भी ऐसी पक्के रंग की रंगवाना, जिससे मेरा जन्म सफल हो जाये। अर्थात् मेरे लिए ऐसा घर, वर देखना जहां मेरी पूरी जिंदगी निभ जाये। उस चुनरी के किनारों पर मायके के दृश्य अंकित हों, आंचल में माई के बोल लिखे हों, मॉ आंगन में बैठी हो और पिता पौर के द्वार पर हों।

उन बालक–बालिकाओं को जो सुअटा का व्रत करते हैं, विवाह के पश्चात् इसका उद्यापन करना पड़ता है। इसको सुअटा उजाना कहते हैं। विवाहित बालिकायें फिर सुअटा नहीं खेलतीं। सुअटा खेलने का यह उनका अंतिम दिन होता है।

इस प्रकार नौ दिन तक सुअटा का खेल चलता है। ''पॉच कोस पर बदले पानी, सात कोस पर बानी'' के अनुरूप ही बुन्देलखण्ड के नगरों एवं ग्रामों में इस खेल की विधि, पूजन एवं गीतों में थोड़ी बहुत विभन्ता देखने को अवश्य मिलती है, पर इस विभिन्नता में जो सामान्य तत्व देखने को मिलते हैं, वह हैं शंकर–पार्वती का पूजन, परवा को कन्याओं का कॉय चढ़ाना, अष्टमी को श्रृंगार युक्त गौरा रानी की प्रतिमा का पूजन एवं बालू का भूत बनाना और मिटाना, नौवीं को कॉय उतार कर पार्वती का पूजन करना, उनसे भेंट करके विदाई लेना, ढिरिया मांगना, ढिरिया में मिले पैसों का उपयोग सामूहिक भोज में करना तथा पूर्णमासी को पार्वती की प्रतिमा का विसर्जन करना, विवाहित बालिकाओं का फिर सुअटा में भाग नहीं लेना।

कहना न होगा कि रंगों और गीतों के इस त्यौहार में नारी जीवन की ही सम्पूर्ण कथा–व्यथा का सजीव चित्रण मिलता है। नारी की जमीन कहीं और होती है, आकाश कहीं और। यदि वह आकाश को पकड़ती है, तो हास–उल्लास से परिपूर्ण ममतामयी धरती उससे बहुत दूर हो जाती है और जन्मदायनी धरती ''माँ'' की पुकार

उसे बेचैन करती रहती है और यदि वह अपनी धरती को ही थामें रहना चाहती है तो सतरंगे इन्द्रधनुष वाला मोहक आकाश उससे दूर चला जाता है। धरती और आकाश की यह लड़ाई उसके मनः मस्तिष्क में निरन्तर चलती रहती है और ससुराल में रहती हुई वह अपने मायके के लिए बिसूरती रहती है :—

चिरई छाये घेंसुआ, बिटिया छाये परदेस।
चिरई बिसूरे घेंसुआ, बिटिया बिसूरे परदेस।।

कार्तिक नृत्य गीत

बुन्देलखण्ड में लोकोत्सव सुअटा के गीतों की अनुगूंज समाप्त भी नहीं हो पाती है कि तारों से भरे मेघ रहित आकाश के तले ओस से सिंचित धरती पर सुगंधित वातावरण में मंद शीतल बयार से बेखबर कार्तिक माह में बुन्देलखण्ड की बाल–वनिताओं का समूह का समूह कृष्ण–लीला पर रचे लोक गीत गाता हुआ नदी, तालाब, बावड़ी, कुएं आदि की ओर उमड़ पड़ता है। उस समय ऐसा लगता है मानो कृष्ण मिलन की उत्कंठा मन में संजोए हुये ब्रजागनाएं ही वंशी ध्वनि सुनकर उत्फुल्लता के साथ भागी जा रहीं हों।

श्रीमद्भागवत की कथा के अनुसार कृष्ण प्राप्ति के लिए ब्रज की कुमारियों ने मार्गशीष (अगहन) में सूर्योदय के पूर्व ही यमुना जल में स्नान कर कात्यायनी देवी की पूजा एवं व्रत किया था। वे प्रतिदिन ऊषाकाल में ही नाम लेकर एक दूसरी सखी को पुकार लेती थीं और परस्पर हाथ में हाथ डालकर ऊँचे स्वर से भगवान श्री कृष्ण की लीला तथा नामों का गायन करती हुई यमुना जल में स्नान करने के लिए जातीं।

वे स्नान कर नदी–तट पर देवी की बालुकामयी मूर्ति बनाकर सुगंधित चंदन, फूलों के हार, भांति–भांति के नैवेद्य, दूध–दीप, छोटी–बड़ी भेंट की सामग्री, पल्लव फल, चावल आदि से उनकी पूजा कर नंद–नंदन श्री कृष्ण को अपने पति के रूप में पाने का वरदान मांगती एवं केवल हविष्यान्न ही खाती थीं।

इस प्रकार पूरे एक माह तक उन्होंने यह व्रत किया। इस पर कृष्ण ने उनके दृढ़ संकल्प से अभिभूत होकर उनके साथ आगामी शरद ऋतु की रात्रियों में बिहार कर कार्तिक की पूर्णिमा को महारास किया और उनकी मनोकामना पूर्ण की।

यद्यपि गोपियों ने मार्गशीष में स्नान और व्रत धारण किया था परन्तु उनकी अभिलाषा कार्तिक मास में ही पूरी हुई थी।

अतएव बुन्देलखण्ड के जनजीवन में मार्गशीष माघ, वैसाख आदि के अन्य स्नानों में इा कार्तिक स्नान एवं व्रत को ही सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

भई न बिरज की मोर सखीरी मैं तो भई न बिरज की मोर
कहना रहती कहना चुनती कहना करती किलोल। सखी री ....

गोकुल रहती वृन्दावन चुनती मथुरा करती किलोल। सखी री ....
उड़–उड़ पंख गिरत धरनी पै, बीनत ब्रज के लोग,

उन पंखन कौ मुकुट बनत है बांधत जुगल किशोर। सखी री ....
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि छलिया नन्दकिशोर। सखी री ....

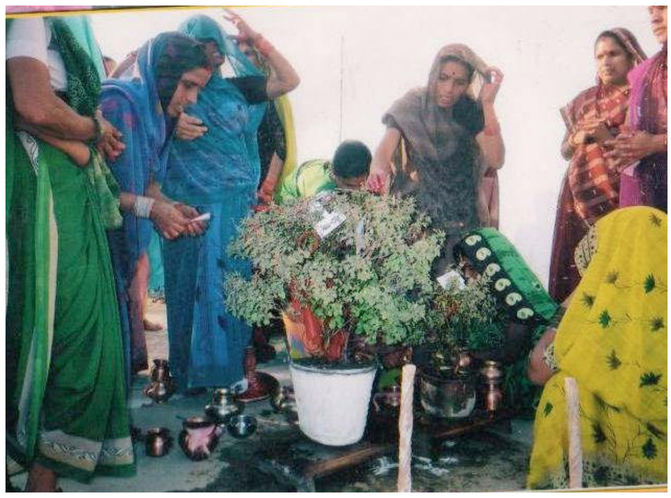

शरद पूर्णिमा से स्त्रियां कार्तिक स्नान के व्रत को आरम्भ करती हैं और कार्तिक की पूर्णिमा को इसकी समाप्ति की जाती है। इस व्रत को धारण करने वाली स्त्रियों को 'कतक्यारी' कहते हैं। इस व्रत का प्रारम्भ आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी (दशहरा) से भी होता है जिसकी समाप्ति कार्तिक शुक्ल दशमी को की जाती है। जिस दिन स्त्रियां इस व्रत का आरम्भ करती हैं उस दिन वे एक नई साड़ी अथवा किसी नये वस्त्र में पान, सुपाड़ी, जवा, तिल और पंचरत्नी मूंगा, मोती, सोना, चॉदी, तॉबे की गॉठ बांधकर व्रत का संकल्प लेती हैं। इस स्नान में एक बार ही भोजन का विधान है। इस भोजन में निषिद्ध वस्तुओं का त्याग आवश्यक रविवार, मंगलवार, एकादशी को अन्न का परित्याग कर केवल फलाहार किया जाता है। इस व्रत में सूर्योदय के पूर्व ब्रह्म मूहुर्त में किया गया स्नान उत्तम कोटि का माना जाता है। सूर्योदय के बाद बहुत विलम्ब से किया गया स्नान करने का अधिक महत्व है क्योंकि इनका जल तालाब, कुएं, बावड़ी आदि जलाशयों से अधिक–अधिक स्वच्छ होता है।

कार्तिक के प्रथम पखवाड़े में अपनी–अपनी टोलियों के जलाशयों पर सिंहासन स्थापित करके पूजन होते, कार्तिक महात्म को पंडितों द्वारा सुना जाता और दूसरे पखवाड़े में भगवान के मानवीय लीला के दर्शन, उनका अन्तर्ध्यान हो जाना, कतक्यारियों के विरहणी–राधा रूप लिये दल के दल अपने कन्हैया को खोजने निकलते, गाते भजन करते जब ये दल निकलते तो सारा नगर राधा नागरि के स्तवन में लग जाता :–

"राधा तुम बड़ी ज्ञानी कौन तपस्या कीन।
तीन लोक चौदह भुवन सो तुम्हरे आधीन।।

मेरे मन मंदिर बसो राधा नागरि खोय।
जा तन की झांई परै स्याम हरित हुति होय।।

राधारानी के विरहणी रूप प्रत्येक कतक्यारी के मन में रम जाते गीत फूट पड़ते। लेखन ने बचपन में इन सामूहिक समरसता के भरपूर दर्शन किये हैं। दतरपुर समेत प्रत्येक नगर, कस्बे, ग्राम में कार्तिक स्नान के ऐसे महती अवसर आध्यात्मिकता से हमें सराबोर करते आये हैं। लोकाराधन लोकजीवन के लोकगीतों के भजन कीर्तन के अलग ही आनन्द है। काश् आज की पीढ़ी इन लोक रंजक रमणीय संस्कारिता संगीत में रमी होती, समझी होती, आज भी समझ जाये तो आज के प्रचार तंत्रों द्वारा परोसी जाने वाली भोगवासना की विकृतयों से हमें मुक्ति मिल कर हमारी लोक संस्कृति की समृद्धि हमारी ऐतिहासिक धरोहर बनी रह सकती है।

लोक जीवन की प्रेरक है प्रकृति, उसकी प्रत्येक गतिविधि, सागर की गहराई, हिमालय की ऊॅंचाई हमारे जीवन का ऊॅंचा और गंभीर करने का उपादान है। नदियों की कलकल, झरनों का प्रवाह, पक्षियों का कलरव, तितली की बहुरंगीनियां, भवंर की गॅूज, ताड़िता की तड़कन–धड़कन, इन्द्रधनुषी वर्षा की छरायें, हमारे मानस के भीतर हिलोरे देकर जो बोल उगलती हैं वे बन जाते हैं हमारे लोक मंत्र। वैदिक काल से आज तक यही साधन हमारे लोक संगीत के सार तत्व हैं जो सहज होकर सम्पूर्णता देते आ रहे हैं। सरलता में चिन्तन के चातुर्य अनुभव के अद्‌भुत उद्‌गार लोकरंजन के साथ हमारे मध्य प्राणों के समान हैं। लोक संगीत शास्त्रीय स्वरों के मूल हैं तो शास्त्रीय संगीत इनकी सर्वज्ञता है।

ब्रजराज लोकचिन्तन के नायक नवलकिशोर भगवान कृष्ण कन्हैया ने लोक संस्कृति के सभी पक्षों के सर्वहारा रूप में प्रबल किया। माखनचोरी, रास, गोचारण, गोपालन, गोरक्षा से लेकर संगठन बल के आधार पर कंस जैसी कुटिलता को काटने वाले योद्धा कृष्ण, द्वारिकाधीश, सुदामा के चरण पलोटने वाले कृष्ण सभी इन लीलाओं ने कृष्ण को सोड़ष कलाओं का पूर्णावतार निरूपित किया है।

ब्रज से सटा बुन्देली क्षेत्र इन कन्हैया की लोक साधनाओं का समैयों का, उत्सवों का, व्रत–पर्वों की पावन प्रतिष्ठा लिये लोकरंजन का कुशल कलाकार है। बुन्देलखण्ड की कार्तिक साधना अपने लाला कृष्ण के बालपन से युवा तक की लीलाओं पर समर्पित होकर तादात्म तक पहुंचने की उपासना है। प्रातःकाल स्नान करके सिंहासन पर स्थापित देव जागरण से लेकर सायंकाल तक के सभी अनोपान कार्तिक के लोकभजनों में भरे हैं :

''उठो मोरे हरि जू भये भुनसारे, सो गउवन के बंद खोलौ दुवारे।
उठके मोहन प्यारे दौउ, राधा रुकमिन दोहिनियां ल्याई।।

सौने के गडुआ गंगाजल पानी, दातौन करौ मोरे अन्तरयामी।
नत हड़ नीम सुगंध उपासनौ, करौ स्नान मोरे अन्तरयामी।।

पीरी अंगौछी पीताम्बर धोती, सपर खोर कै तिलक संवारौ।
चन्दन अछत माथे दीनौ, धरम सिला पै पैठी जसोदा।।

अपने कन्हैया कौ रचती कलेवा।

इस आरती में सभी प्रकार के व्यंजनों का वर्णन करते पूजन, शयन तक कार्तिक स्नानों की प्रथम उपासना दोपहर तक पूरी होती है, शेष समय कथावार्ता, फलाहार और भजनों की मन भावनी श्रृंखला जनमत को मोहित करती है।

उपासना के साधनों की कमियों को अपने सरल बोलों से इस प्रकार पूरी करती हैं कि विधान का कोई अंश अधूरा न रहे। सब प्रकार के पूजन के बाद भी अर्पण–समर्पण में कुछ अधूरा रह गया है तो उसमें इन कतक्यारियों, गोपियों का दोष नहीं, प्रक्रिया की न्यूनता ही है :–

कहा लै चढ़ाऊँ राम, मैं तो तेरा यश गाऊँ राम।
गंगा के नीर वारी मछरी विटारें बेई ना अनूठे राम बेई न अनूठे।।

मैं कहा ले चढ़ाऊँ राम तेरौ जटा गाऊँ राम।
सीठी के चांऊर चिरैया विटारें बेई न अनूठे राम बेई न अनूठे।।

वारी के फूल वारे भंवरा बिटारै बेई ना अनूठे राम।
गउआ के दूध वारे बछरा विटारे बेई ना अनूठे राम, बेई न अनूठे।।

मिठया के पेड़ा बिलइयां बिटारे, बेई न अनूठे राम, बेई न अनूठे।
पूरी पपरिया लरका बिटिया बिटारें, बेई न अनूठे राम, बेई न अनूठे।।

मैं तो कहा लै चढ़ाऊँ राम तेरो जस गाऊँ।।

कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं है, झूठी है, तो आपको क्या अर्पित किया राम जाय। बस मात्र उपाय है कि आप का यशोगान हम करें, गाकर आराधना के अधूरेपन को पूरा करती हैं, कार्तिक की उपासिकायें कतक्यारियां।

अपनी पूर्णता के भरोसे वे कन्हैया से कामनायें करती हैं, मांगती हैं, विधिवत् गृहस्थ जीवन के अनिवार्य अंग इसमें समये हैं :–

जोई जोई मांगे सोई सोई दइयो।
नातर मथुरा के पथरा करियो।

राजा जनक से बाबुल दीजौ।
रानी सुनैना सौ माता दीजौ।

राजा दसरथ से ससुरा दीजौ।
सो कोसल्या सी सासू दीजौ।

राम लखन से भइया दीजौ।
सो सीता सी भौजाई दीजौ।

रानी सुहद्रा सी ननदी दीजौ।
इतनै जो देव तौ मानस करियो।

नातर मथुरा के पथरा करियो।
जो मोरे हरि जू की आरति गावें।

बस बैकुण्ठ अमर पद पावैं।।

इन्हीं कामनाओं के साथ व्रत की साधना पूर्ण होती है। अंचवन पान के वीरा के वर्णनों से कार्तिक के भजनों की पूर्णता प्रदर्शित होती है। यह सब होने के बाद भी भक्त की ललक तो यथावत् है :–

हमारे मन बस गये जुगल किशोर

मोर–मुकुट पीताम्बर सोहै, मुरली अधर मरोर। हमारे ....
प्यासे नयन रहत दरसन बिन जैसे चन्द्र चकोर। हमारे ....

झांकी दृगन विलोकत सजनी, कोटि कारा छवि चोर। हमारे ....
बाम अंग राजत महारानी, लखत प्रिया मुख ओर। हमारे ....

रानी बल्देव जू कहत कर जोरैं, चिबहु कृपा की कोर। हमारे ....
हमारे मन बसे गये जुगल किशोर ....।।

राधा भाव लिये कतक्यारियां अपनी उपासना बेला में प्रत्येक क्षण कन्हैया जू की विभिन्न लीलों की छवियों का स्मरण करती गा उठती हैं। अपने लाड़ले से विलग नहीं होना चाहती हैं, सो जाते–जाते कह जाती हैं :–

आ जाऊॅगी बड़े भोर मैं दइया लैके आ जाऊॅगी बड़े भोर।
ना मानौ कुड़री धर राखौ, हीरा जड़े हैं करोर।। मैं दइया ....

ना मानौ मटकी धर राखौ, सब गऊअन कौ मोल। मैं दइया ....
ना मानौ चुनरी धर राखौ, कड़े हैं पपइया मोर। मैं दइया ....

चन्द सखि भज बाल कृष्ण छवि, छलिया जुगल किशोर।
मैं दइया लैके आ जाऊंगी बड़े भोर।।

गोपियॉ बनी साधिकाओं को सभी अमल तो बिसर जाते हैं, पर राम नाम का अमल भुलाये नहीं भूलता :–

और अमल में तौ दाम लगत है, सो राम अमल में न लागत पाई।
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि, हरि चरनन में ध्यान लगाई।।

केवल गोपियों की राधा की बात नहीं ब्रज के कन्हैया से कृष्ण बने आराध्य की भी यही दशा है :–

ऊधौ मोय ब्रज विसरत नइयां।

सोनै रूपे की बनी द्वारिका पै, गोकुल सी छवि नइयां।। ऊधौ ......
जो सुख चाहिये मात जसोदा, सो सुख ओरन नइयां।। ऊधौ ......

कदम्ब की छैंया और गोकुल की गैया, भगवान कृष्ण को भुलाये नहीं भूलती। भ्रमर गीत गाथा का ये लोकरूप बुन्देली में लोकप्रिय है। कार्तिक के भजनों की ये भावना हृदय ग्राहिता सभी को मोहित किये रहती है।

जिस समय कतक्यारियां ऐसे गीतों के गाते नगर परिक्रमा करती हैं तो जिज्ञासु मनों को उपासिकाओं के दर्शन करने और उनके सुरीले कण्ठों से निकले भजनों की ललक उठती है। दोनों ओर के आकर्षण, प्रेम प्रदर्शन, लीला लालित्य में बुन्देली आत्मा रमी है। सारा क्षेत्र ब्रजमय हो जाता है, हर लीला में कृष्ण की झांकी उभर आती है।

बजत गुमान भरी मुरलिया, बजत गुमान भरी।

काहे की बा बनी मुरलिया, काहे के तार गसी बा मुरलिया।
सोने की बा बनी मुरलिया, रूपे के तार गसी बा मुरलिया।

कौन नगर में बजी मुरलिया, कौने झनक परी बा मुरलिया।
गोकुल नगर में बजी मुरलिया, पन्ना में झनक परी मुरलिया।

अपनै महल से चलै राधिका, संग में पांच सखी, मुरलिया।
भई बावरी फिरै गलियन में, लखै न काहू हरी मुरलिया।

कन्हैया के मुख पर विराजी स्वर बिखेरती मुरली गोपियां की। ईर्ष्या की पात्र होकर उस की धुन सुनके कन्हैया जू के दर्शनों की लालसा जो पूरी होती है :–

फिर बाजी फिर बाजी हरी की मुरलिया,
सो जा मुरली ने मन हर लीनौ।
मन हर लीनों सकल सुख छीनौ।
सो जा मुरली ने मन हर लीनौ।

मुरली कैसी ही क्यों न हो पर अपने सुरों से रस भर देती है। बजती रहे मग्न करती रहे। यही तो भक्ति की पूर्णता है। राधा रूप में मग्न गोपी, नंद यशोदा के पास पहुंच के कन्हैया जू को उसकी गैया को दुहने के भेज देने का आग्रह करती है।

किसी भी रीति से हो गोपियों को तो कन्हैया जू का सानिध्य ही सब कुछ है :

नैक पठै दे गिरधारी जू कौ मैया, वनवारी जू को मैया।

सबरे सखा माता दुह–दुह हारे,
सो हार गये बलदाऊ जू भैया।

बड़ी तै ग्वालिन अनौखी तोरी गैया,
सोई अबई तो आऔ मोरौ वन सैं कन्हैया।

सुगर ग्वालिन हठ कर बैठी सो,
इनई के हाथ लगत मोरी गैया।

नंन हंसे जसुदा मुस्क्यानी सो,
जाओ लाला नेक दुह आओ जाकी गैया।

नन्द यशोदा भी जानते हैं, मानते हैं कि कन्हैया कौन है और इनके दर्शन के लिए कैसे–कैसे बहाने बनाके गोपियां अपने घर ले जाती हैं, अपने लाला की इस मोहिनी में भग्न होकर नंद यशोदा सब भूल जाते हैं।

एक ओर तो गोपी अपनी गाय को दुहन को कन्हैया को बुला लाती हैं और दूसरी ओर तुनक कर कह उठती हैं :–

अब ना दुआऊं तुमसै गैंया, सांवरे अब न दुआऊं तुमसै गैंया।
गैया दोवत इत उत चितवत सो, बिजक जात मोरी गैया।। सावरे ......।

इत उत चितवत का मर्म है दोनों के नयनों का मिलन आपका अपना सर्वस्व समर्पण। गोपी मन से चाहती है कि कन्हैया उसको ही निहारते रहें, वह बुला भी इसीलिए लाई है। पर उलहना अपने आप में एक माध्यम है, दोनों के एक मय होने की। कतक्यारियों की ये उपासना बुन्देली की भक्ति रसमयी पुण्य जीवनी है।

तुलसी के विरवा वृन्दा की शोभा है, तुलसी भगवान के मस्तक पर विराजती है। गोपियों को यही ईष्या का विषय है। वे कार्तिक में तुलसी के बिरवा की पूजा करती हैं :–

नमो नमो तुलसा के विरवा,
सो जितै कन्हैया प्यारे खेलत घुटइयां,

00

हमारै तौ राधा रुकमिन लाड़ली अर तुलसा प्राण अधार।

तुलसी की महिमा कृष्ण की पटरानियों से अधिक कहके प्रकृति के पूजन की तुलसी के विरवा के मानवीकरण की विशेषता है।

कार्तिक के प्रथम पखवाड़े तक इसी क्रम की विभिन्न जलाशयों, घाटों पूजा होकर दूसरे पखवाड़े में भगवान के अंर्तध्यान होने की मनलीला के संदर्भ से उपजी रीति के अनुरूप अपने कन्हैया को खोजने, मान–मनौवल के लिए विरहिन राा के रूप में गोपियों की आस्था लिए कतक्यारियॉ पृथक–पृथक घाटों में भगवान को खोजतीं, भजन गाती, ग्राम–कस्बों, नगरों में ईश्वरीय महिमा के भजनों से ऐसे भाव भरे वातावरण प्रस्तुत करती हैं कि इन टोलियों के निकलते ही उस क्षेत्र के वासी बाल, युवा, बूढ़े, नर–नारी घरों से निकल के इन भगतियों उपसिकाओं के हाथ जोड़ के अपना पुण्य मानते हैं।

''हमें छोड़ कां जाओ ब्रजवासी। हमें ....

जो तुम हमैं छोड़ कऊॅ जैहौं तो,
तज डारौ प्रान गरै डारौ फासी। हमें ....

कतक्यारी भजन गाती, भगवान को खोजती नगर में जौ बोती 'गंगा जू में जों बये' के पुण्य लूटती, अन्य टोलियों के मार्ग दिखातीं, पूरे वातावरण को कन्हैया जू की लीलामय बना देती हैं :–

बेई न मिले जिनके हम दासी।

मोर मुकुट हरि के अधि बिराजै।
सो कलगी बीच बसाई हरि कासी। बई न ....।।''

इस प्रकार पूरे एक सप्ताह भ्रमण करती अपनी पूजा के क्रम को चलित रूप देकर विभिन्न जलाशयों पर खोजती कन्हैया जू को प्राप्त कर लेती है। फिर उसी प्रकार पूजा के क्रम अपने स्थापित सिंहासनों पर चलते हैं। अंतिम सप्ताह में आराधन पूजन के बाद अपने–अपने घरों पर कतक्यारियों के जोड़े राधा दामोदर के रूप में पूजे जाते हैं। उन्हें भोजन कराये जाते हैं, इनमें नाते, रिश्तों तथा पड़ौस के भी जोड़े न्योते जाते यथा सामर्थ्य सामूहिक भोजनों का यह आनन्द व्रत की पूर्णता के वैभव का द्योतक बन जाता।

कार्तिक स्नान के अंतिम दिन अपने भगवान को पकवानों के घर बनाये जाते, बेसन की पूड़ी–पुआ की पांखें–म्यारें, चिरइयां, बेड़ेरे और कुरइयां, खपरा बनते, घर रूप लेता उसमें कन्हैया जू विराजते, दीपक जलता, पूजा आरती के बाद महीने भर तक कार्तिक–महात्य सुनाने वाले पंडितों की घर–घर कतक्यारियां पूजा करती, दक्षिणा देती, इस घर बने पकवानों को भेंट करती तथा स्नान के पहिले दिन बधवाई व्रत की गांठ को खोलती, उसमें बंधे रुपइया–पैसा, सोना–चांदी जो भी हो पंडित को भेंट कर दी जाती। इस प्रकार इस मास के व्रत का सफल समारोपण होता।

दूसरे दिन प्रकृतिदत्त सहज मेवा, बेर–मकोरों, सिघाड़े आदि का चबेना भगवान को अर्पित किया जाता और व्रतधारियों के पारने होते।

इस प्रकार ''लैगओ चीर मुरारी मैं कैसी करौ .... '' चीर हरण की लीला के चिन्तन दर्शन से आरम्भ हुआ।

ये कार्तिक स्नान सम्पन्न होता है।

''होत वृन्दावन रास जो ऐ जी ऐ सोन देखन मैं न गई,
नाचत गोपी ग्वाल सो ये जी ऐ सो देखन मैं न गई।।

कई दिनों मुग्ध होकर गाते रहके अतीत के उस पुण्य सम्मेलन के सपनों में कतक्यारियां खोई रहके आगे भी इस प्रकार के अवसर प्राप्त होने की कामना करती रहतीं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम आज भी इन अनुष्ठानों, लोक भजनों, लोक रंजन के फलितार्थ को जाने समझें और इनको पूरी आस्था से आयोजित करते रहके इनमें सर्वतोमुखी आकर्षण स्थापित करें तो उनमें समाई भक्ति की भावना और ध्यान धारणा, लोक संस्कृति, लोक रंजन को भव भय भंजन का आधार बना के हम आज भी भोगवादी भटकानों से अपनी पीढ़ियों को बचा सकेंगे, अपने महिमा भक्ति पूर्ण मूल्यों की रक्षा कर सकेंगे।

सैताम नृत्य गीत

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली भोई जाति का ये नृत्य–गीत है। कुछ लोग इन्हें बुन्देली लोकगीत मानने में सकुचाते हैं, जबकि ये गीत शिल्प और भाव सभी स्तरों पर पूर्णतः बुन्देली गीत हैं। अक्सर शादी–विवाह के अवसर पर सैताम नृत्य भोई जाति द्वारा आयोजित किये जाते हैं, किन्तु गुड़ की भेंट देकर इन्हें किसी भी अवसर पर सम्पन्न कराया जा सकता है। इन गीतों को स्त्री और पुरूष दोनों गाते हैं। नृत्य के समय लकड़ी के चटकोरें बजाये जाते हैं। विभिन्न शौलियों के सैताम गीतों के अन्तर्गत प्रश्न–उत्तर की शैली के गीत प्रमुखता से मिलते हैं। इनमें भक्ति, अध्यात्म, हास्य, उपालम्भ, श्रृंगार आदि के भाव अभिव्यक्त होते हैं। चुटीले और शैतानियत से भरे होने के कारण इनका सैतान नाम भी प्रचलित है।

सम्पूर्ण क्षेत्र में सैताम गीतों का बहुलता से प्रयोग किया जाता है, किन्तु भोई जाति एक पिछड़ी हुई जाति है जो आसानी से अपने मनोभावों को बाहरी व्यक्ति के सामने प्रदर्शित नहीं करती। अतः प्रतीकात्मक रूप में ही इनका संक्षिप्त संकलन किया गया है।

मंदर अजब बनाव रे कारीगर, मंदर अजब बनाव।। टेक।।
काहे की भींट करी, काहे कौ गारो,
काहे की पछा बोलन हारौ। रे कारीगर .....

तन की है भींट, सुरत कौ है गारौ,
अरे मोरे राम रे, सुरत कौ है गारौ,

मन कौ पंछी है, बोलन हारौ। रे कारीगर .....
खिलस गई भींट, बिगस गओ गारौ,

अरे मोरे राम रे, बिगस गओ गारौ,
उड़ गओ पंछी तौ, बोलन हारौ। रे कारीगर .....

ए पद कौ कोऊ, अरथ लगावै, अरे मोरे राम रे,
अरथ लगावै बोई है संत सयानों। रे कारीगर .....

सैताम गीत

पैले रे पार की नौरंग गोरी,
हरे हरे गुंडा रिझाउन खों।

हम कैसे आवें भोले श्यामलिया,
पांउन में बिछिया बजन भारी।

बिछिया उतार गोरी ओली में,
धर ले खेलन डंडा मिलाउन खों।

पैले रे पार की नौरंग गोरी,
हरे हरे गुंडा रिझाउन खों।

पैले पार नौरंग गोरी है। यह अच्छे–अच्छे गुंड़ों को रिझाती है। हे मेरे भोले श्यामलिया, मैं तुमसे मिलने कैसे आऊं? मेरे पांव में बहुत आवाज करने वाले बिछिया हैं। हे गोरी, बिछिया उतारकर ओली में रख लो और खेलने तथा डंडा मिलाने के लिए आ जाओ।

गीत :

भाई रामा को मैंने काहा बिगारौ बालम मिले नादान।
पीसन जैहों संगे लग हैजें सखी री बालम मिले नादान।

नुकायेन के धोके बालम खों ऊर दये बालम मिले नादान।
गुबरा खों जैहों संगे लग जैहें, ए मोरी सखी संगे लग जैहें।

गुबरा के धोके बलम को ठूंस दये बालम मिल नादान।
भाई रे रामा को मैंने काहा बिगारो बलम दये नादान।

पनियां खों जैहों संग लग जैहें, ए मोरी सखी संग लग जैहें।
गघरी के धोके बलमा खों फांस दये, बालम मिले नादान।

नदिया खों जैहें संगे लग जैहें, ए मोरी सखी संगे लग जैहें।
धोती के धोके बलम खों फींच दये, बालम मिले नादान।

भाई रे रामा को मैंने काहा बिगारो, बालम मिले नादान।
रुटिया खों जैहों संगे लग जैहें, ए मोरी सखी संगे लग जैहें।

डूंड़ा के धोके चूल्हे में ठूंस दये, बालम मिले नादान।

भाई, मैंने ईश्वर का कया बिगाड़ा था कि उसने मुझे नादान पति दिया? मेरी बिडम्बना तो देखो, वह मेरे पीछे लगा फिरता है। मैं चक्की पर पीसने बैठती हूँ, तो वह मेरी जांघ से सटकर जा बैठता है। एक बार मैंने उसको अनाज के धोके में चक्की में ऊर दिया। मैं गोबर उठाने जाती हूँ तब भी वह मेरे साथ लग जाता है। एक बार मैंने उसे गोबर के धोखे में गोबर की हेल में पटक दिया। हे भाई, मैंने ईश्वर का ऐसा क्या बिगाड़ा था जो उसने मुझे नादान पति दिया। पानी को कुएं पर जाती हूँ तब भी वह पीछे–पीछे चला जाता है। एक बार मैंने घड़े के धोखे में बालम को ही फांसकर कुएं में डाल दिया। नदी जाती हूँ, तो भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। एक दिन मैंने धोती के धोखे में बालम को ही पछार दिया। मैं रसोई बनाने बैठती हूँ तो वह चूल्हे के पास जा बैठता है। एक बार मैंने लकड़ी के धोख में उसे चूल्हे में ठूंस दिया। हे भाई, मैंने ईश्वर का क्या बिगाड़ा था जो उसने मुझे ऐसा नादान पति दिया।

प्रस्तुत गीत में इस आदिवासी रमणी ने बाल विवाह का कैसा मजाक उड़ाया है, कितना कसकर विरोध किया है, कोई यह न समझे कि ग्रामीण अपढ़जनों में

बिहारी, बोधा और पजनेस जैसे कवि नहीं हुए, तो उनका ग्राम्य साहित्य हास्यरस से रिक्त होगा। इन अज्ञात अपढ़ जनों ने आवश्यकता के अनुसार काव्य के सभी रसों का समावेश ग्राम गीतों में ऐसी निपुणता तथा बहुलता के साथ किया है। जैसा साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ भी नहीं कर पाते।

स्वाभिमानवश वर्तमान काल के समाज सुधारक वह समझते हैं कि प्राचीन समय से चली आने वाली बाल विवाह आदि कुप्रथाओं की ओर समाज का ध्यान उन्होंने आकर्षित किया है। समाज में फैली हुई बुराइयों और उनके दुष्परिणामों की ओर अपने धुंआधार व्याख्यानों द्वारा इन्होंने समाज को सचेत किया है। उनका यह अभिमान झूठा है। गांव की स्त्रियां हजारों वर्षों से बाल विवाह और वृद्ध विवाह का विरोध प्रभावशाली ढ़ंग से करती चली आ रही हैं। वे खेत–खलिहान, गली–कूचों, विवाह आदि उत्सवों के समय चलते–फिरते चिल्ला–चिल्लाकर इन कुप्रथाओं का विरोा प्रकट करती रहती हैं। यह विरोध समाज सुधारक, उपदेशकों द्वारा दिये गये व्याख्यानों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली तथा हृदयग्राही होता है। यह तो पुरुष समाज का दोष है कि वह नहीं सुनता।

गीत :

आड़र दीनी गाड़र दीनी।
डला भर ऊन दीनी।

बम्मन मार पटा धर दीनी।
रूपे की घरी सोने की माल।

रंहट चलै पानी ढरे।
निम थे औलाद बढ़े।

कओ पंचो भांवर परीं कै नईं।

एक अन्य शौताम गीत जो कि मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत एवं जीवन की निस्सारता को व्यक्त करता है। मानव जीवन में मोह–माया एवं लोभ भ्रामक हैं। हम जैसे आये थे वैसे ही खाली हाथ जाना पड़ता है।

पाले सुआ उड़ जायेंगे इक दिन,
पाले सुआ उड़ जायेंगे .....

इस माया का गरब न करियो रे,
सोना ल्यैओ गरब न करियो रे,

इसे आके चोर ले जायेंगे,
इक दिन पाले सुआ उड़ जायेंगे।

इस जोबन का गरब न करियो रे,
हां मोरे राजा गरब न करियो रे,

इसे आके राम ले जायेंगे,
इक दिन पाले सुआ उड़ जायेंगे।।

समधी–समधिन की नोंकझोंक उनकी पसंद नापसंद का विवरण मिलता है :

कारे भटा को भरतो न खेहों,
मैं कारी हो जाऊं रे लाल।

पीरी–पीरी बरफी लईओ मोरे समधी,
मैं पीरी हो जाऊंगी लाल।

गोरी–गोरी पूरी ले अइओ,
मैं पीरी हो जाउं रे लाल।

कारे भटा को भरतो न खेहों,
मैं कारी हो जाऊं रे लाल।।

चंदा चकोर नेहा लगन दे, नेहा की मारी मैं मर–मर जाऊं मोरे राजा।। टेक।।
जा छानी बा छानी कूंदे बिलैया,
मत रोबे नन्तीं बहू, आ गये लिवौआ। चंदा चकोर ......

कौन पुरा तोरों माइ मायको, कौन पुरा सुसरार। चंदा चकोर ......
ऊलें पुरा मोरो माई मायको, पैले पुरा सुसरार। चंदा चकोर ......

कैसो लगै तोरों माई मायको, कैसी लगै सुसरार। चंदा चकोर ......
नोनों लगे मोरो माई मायको, बुरई लगैं सुसरार। चंदा चकोर ......

––00––

काये ठांड़े झेला बारे गुनईया में, काये ठांड़े झेला बारें ।। टेक।।

तुमने बुलाय सो हम आ गये है, गुनईया में ....
तोरी मोरी जनम की यारी। गुनईया में ....

लाल पईसा बड़ो लोभी। गुनईया में ....

——00——

तेरे लसारे केश मोरी बेला।। टेक।।
लूली पैरें पैंजना कानी काजर देय,

ओंटा पे से ढड़क परी खसम पनइंया दे। मोरी बेला .....

पाठे में पड़िया ब्यानी भौजी बांधे रेखड़ी, भैया मोरे मूस।
मोरी बेला तेरे सारे केश ......

पाठे में झिरना झिरे बेला कली अतराय,
पापी हिंडोलने डूबे मिंतुर प्यासे जाये। मोरी बेला .....

मोटे की झुरझुरू गांठ गठीली होय,
लोगों में की लोगनी भोतई रसीली होय। मोरी बेला .....

उरिया से उरिया लगी मकरी पूरें जार,
बेरी ठाड़ो दोर में कौन गली कड़ जायं। मोरी बेला .....

घूम घुमारो लंहगा पेंरे अंगिया गोटेदार
खसम तुम्हारे हीजड़ा चलो हमारे साथ। मोरी बेला .....

——00——

चौड़ा के बुरय हो जाये, दगाबाजी से मारे बालेमा।। टेक।।

सुनो जब बेलारानी ब्रह्मा मरे गये भौत घबरानी,
दिन करती महल सुनतई गई घबराय।
राजकुमारी की दशा हमसे कहीं नें जाए। दगाबाजी .....

अंग से घूंचन डारे मारें फिरें जवाहर मोती,
सारे नक्शा से बेंदी गिरी मोहनमाला हार,
हीरा—मोतिन से जड़े दऊं जमीन में डार। दगाबाजी .....

फेंक दई राजकुमारी कहूं चोली कहूं चीर कहूं रेशम सारी
भारी विपदा में परी जा अलबेली नार,
दरवाजे में आन के, मार दिया ललकार। दगाबाजी .....

तुरत दावन बुलाये, कागज कलम तुरत साने मंगवाये,
बांधे लाकर कीन्हो रे सामान,
ऊदल ने पाती लखी लगी पति को ध्यान। दगाबाजी .....

——00——

बरसे नें एकई बेर हमारे पिया बदलिया हो रये।। टेक।।

असाढ़ अंग आगी लगी बर गये सकल शरीर,
प्रेम बूंद बरसी नई जे हेरे मेव की बाट। हमारे पिया .....

सावन मईना जब लगो रे पिया मिलन की आस,
पिया मिलाये नें मिलें जे दगा करे जे धाय। हमारे पिया .....

भादों रात भ्यांयदी लागे फिर इंधियारी पाख,
मन को भोंरा के रओ चलो पिया की सेज। हमारे पिया .....

क्वांर कमंडल ले लये अंगे ओले भभूत,
जटा रखाये केश के घर–घर मांगे भीख। हमारे पिया .....

कातक मइना जब लगो रे सखिये गोदन पूंजन जांय,
मैं का पूजती राधिका घर नईयां नंद के लाल। हमारे पिया .....

——00——

खिलारी जई खेलो रे लम्बे डरे मैदान।। टेक।।

ठंडो सो पानी गरम कर ल्याई खिलारी,
जई सपरो रे लम्बे डरे मैदान,

रेशम धोती धरी लयें ठाड़ी खिलारी,
जई पैरों रे लम्बे डरे मैदान।

ताती जलेबी तुरत बनवाई खिलारी,
जई जेलो रे लम्बे डरे मैदान।

सुन्ने के लोटा जल भर ल्याई खिलारी,
जई पीलो रे लम्बे डरे मैदान।

पान पचासी को बीरा लगाओ खिलारी,
जई चाबो रे लम्बे डरे मैदान।

सैर सपेती निवारो के पलका खिलारी,
जई लेटो रे लम्बे डरे मैदान।

अम्मा की डरियो झूला घले खिलारी,
जई झूलो रे लम्बे डरे मैदान।

——00——

बेला तोरे चलाये नें चले रे चले महोबे चाल भरी करी अनूर।। टेक।।

भर ज्वानी कातक मास महादे की
सेवा करे वर मिले पंडवा वंश। बेला तोरे चलाये ......

नें देखे बाग लखूरे न कृतुआ ताल,
मनासी रानी देखी नंई कबे लई औतार। बेला तोरे चलाये ......

तरहर पैरे हरी अंगरखी ऊपर धंगला सेत,
रेशम टोपी सिर पे धरें गोली चीप हो जाय। बेला तोरे चलाये ......

सात तबा छाती चढ़े चंऊन बगल पे जाय,
गले हथेड़ा लोह के एक बराबर जाय। बेला तोरे चलाये ......

धों धों तोपें चले धुआं के छाया होय,
लगी लड़ाई सुनो की सूरज हो गये अलोप। बेला तोरे चलाये ......

खट खट तेगा चलें समक समक तरवार,
कट कट रुंड गिरें धरनी में कटी कछुआ बान। बेला तोरे चलाये ......

नेंहरे निहरें चऊर चले अधनुहरे चले कटार,
भर दोर में भाला चले आर—पार हो जाय। बेला तोरे चलाये ......

मुइयों के मुंह चोंतरा लोथर गजे पहार,
असी कोस की गिर्द में बहे रकत की धार। बेला तोरे चलाये ......

प्रस्तुत सैताम गीत ग्राम नवलपुर के भोले–भाले भोई जाति के स्त्री–पुरूषों द्वारा व्यक्त किये गये जिन्हें बलराम चौरसिया खेरी कलॉ द्वारा लिपिबद्ध किया गया है एवं जिसके संकलन सहयोगी श्री कमलसिंह ठाकुर सरपंच ग्राम खैरीकलां, विकास खण्ड केसली हैं। जिनका हृदय से आभार व्यक्त करते हुए इन विलुप्त होते हुए सैताम गीतों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

घूमे रे घुमारस गधर में, घेला घूमे रे।

कोने खुदाये कुयला बाबरी, कोने डरा दये पाट।
सुसरा खुदा दये कुयला बाबरी, जेठा डारा दये पाट। घूमे रे ....

काये में कुयला बांधियो, काहे के लगे गुना।
लोगों ने कुयला बांधियो, रेशम लगे गुना। घूमे रे ....

कोने वरन सिर बेहरो, कोन वरन पनहार।
ऊंची वरन सिर बेहरो कामोली पनहार। घूमे रे ....

कुयला में को मेंदरो, पनिया भरन न देव।
काहो जो मांगे मेंदरो, मांगे रे गरे को हार। घूमे रे ....

तेरे लसारे केश मोरी बेला । टेक।

लूली पैरे पैंजना कानी काजर देय,
ओंटा पे से ढ़ड़क परी, खसम पनइंया देय। मोरी बेला .....

पाठे में पड़िया ब्यानी, भौजी रेखड़ी भैया मरोरे मूस,
मोरी बेला तेरे लसारे केश .....

पाठे में झिरना झिरे बेला कली अतराय,
पापी हिडोलने डूबे मिंतुर प्यासे जाए। मोरी बेला .....

मोटे की झुरझुरू गांठ गठीली होय,
लोगों में की लोगनी भोतई रसीली होय। मोरी बेला .....

उरिया से उरिया लगी मकरी पूरें जार,
बेरी ठाड़ों दोर में कौन गली कड़ जांय। मोरी बेला .....

घूम घुमारो लंहगा पेंरे अंगिया गोटेदार,
खसम तुम्हारे हीजड़ा चलो हमारे साथ। मोरी बेला .....

गीत :

जेठी ने करी तकरार अबे लुहरी ने बिगाड़ी बालेमा। टेक।

लयें प्याला संग में, लग–लग जेठी सुनें लये इशारो दूर सें,
जब से लुहरी घर में आई देरी भीतर पांव परे,
जब से मुंह नें बोली नें लगी हमारी सौत। अबे लुहरी ने ....

जब लगे दरपन सी प्यारी लेके दुलैया संग में सोरय बेईमान,
जैसी पारस में आगी लगे दिन सूझे नें रात। अबे लुहरी ने ....

हमारे पेट में जूड़ सी भरी उमड़ावे आधी रात,
अब हम परें कौन के साथ। अबे लुहरी ने ....

उन्हें सारी हमें धोती नई का रे बोंटा झंझरीदार,
टोडर है ढरमा के बिंदिया झुमकादार। अबे लुहरी ने .....

कर खाते बनी मजूरी ओर की जिनके घर में दो दो जनी
जिनके जेई हाल। अबे लुहरी ने ....

बधाई लोक नृत्य

बधाई नृत्य के नाम से ही मांगलिकता समायी है। मांगलिक अवसरों खासकर खुशी के समय चाहे बच्चों का जन्म हो, विवाह हो, विभिन्न आनुष्ठानिक संस्कारों के निर्वाह के वक्त बधाई नृत्य करने की परम्परा लगभग समूचे बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। शीतला माता की मनौती पूरी होने पर बधाई नृत्य अवश्य किया जाता है। यह देवी शक्ति की कृपा का धन्यवाद स्वरूप नृत्य है। इसलिये बधाई बुन्देली लोकजनों के मन के उल्लास का नृत्य बन गया है। बुन्देलखण्ड में बधाई नाचने की बड़ी पुरानी परम्परा है। संभवतया जब से बुन्देली समाज और संस्कृति का निर्माण हुआ, तब से ही बधाई नृत्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। यह एक सांस्कारिक लोकनृत्य है।

बच्चे के जन्म के अवसर पर मातृ और पितृ पक्ष की ओर से कई रीति–रिवाज और प्रथाओं का निर्वाह करना पड़ता है। ऐसे ही बच्चों के जन्म पर गुड़ के लड्डू बांधने की रस्म होती है। लड्डू समारोह पूर्वक प्रसूता के मायके भेजे जाते हैं, फिर सवा महीने तक ससुराल में उत्सव होता है जिसमें सभी रिस्तेदार समधी आदि सम्मिलित होते हैं। इस उत्सव को बधावा कहते हैं और इसी बधावे के समय बधाई नृत्य किया जाता है। बधाव उत्सव पर किये जाने के कारण ही इस नृत्य का नाम बधाई पड़ा।

बधाई नृत्य में स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर हिस्सा लेते हैं। परस्पर में बधाई मन की उमंग का नृत्य है। आंगन में बधाई के बाजे बज रहे हों तो किसके पैर थिरकने नहीं लगेंगे। घर–परिवार के लोग बाहर से आने वाले मेहमान तक स्वाभाविक रूप से बधाई नाचने के लिए उत्सुक रहते हैं। पहले कोई एक स्त्री बधाई नाचने खड़ी होती है, तेजी से नाचने लगती है, उसे देखकर स्त्री–पुरुषों में एक उत्साह का संचार हो जाता है, फिर दूसरी स्त्री उठ खड़ी हो जाती है फिर कोई पुरुष नर्तक भी नृत्य में कूद जाता है, धीरे–धीरे कई स्त्री–पुरुष मौज में बधाई नाचने लगते हैं। परम्परा में ऐसे ही बधाई नृत्य का समा बंध जाता है। लेकिन आजकल सांस्कृतिक मंचों पर बधाई नृत्य की प्रस्तुति में मंच की मर्यादाओं और प्रदर्शन की प्रासंगिकता के संयोजन का ध्यान रखा जाता है। इससे बधाई नृतय की खूबसूरती में चार चॉद लग गये हैं। बधाई

एक प्रदर्शनकारी रूप मंच पर सभी दर्शक श्रोताओं को कलात्मक संगीतिक सोहबत और नृत्य संयोजक से विमोहित करने में समर्थ होता है।

बधाई का लोक संगीत :–

बधाई मूलतः संगीत पर आधारित मांगलिक नृत्य है। बधाई की बजौटी यानि सांगीतिक सहभागिता और उससे निकलने वाली समवेत स्वर ध्वनियां अथवा लय ताल इतनी मधुर, मनमोहनी होती है कि हर किसी का नाचने को मन हो जाता है। ढ़ोलक की खनकती थाप, मृदंग की माधुरी, रमतूला की रंभाई, नगड़िया की घनघनाहट, लोटे की मीठी तरंग, अलगोजा, बॉसुरी की स्वर लहरियां और ढपले की सबसे अलग लगने वाली ताल बधाई नृतय के अभिनव लोक संगीत की सर्जना करती है, तब ऐसा लगता है कि जैसे धरती पर स्वर्ग का संगीत उतर आया हो और उस पर स्वर्ग की नर्तकियां नाच कर रही हों। वाकई में बधाई लोक नृत्य संगीत का सौन्दर्य सचमुच में स्वर्गिक होता है। बधाई नृत्य का आधार नृत्य का आधार, लय, ताल है लेकिन गीतों के आधार पर बधाई नृत्य का कलात्मक विस्तार और अधिक हो जाता है। नर्तक लोक गीतों के पदार्थ को हाव–भाव के माध्यम से अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं और बधाई नृत्य में मुद्राओं की विविधता के साथ नृत्याभिनय की गुंजाइश भी हो जाती है। बधाई नृत्य गीतों में पारिवारिक ननद, भौजाई की नोक–झोंक, सास–बहू के रिश्तों पर कटाक्ष नजर आते हैं। श्रृंगार गीतों की बधाई नृत्य में सर्वाधिक जगह होती है। दाम्पत्य जीवन के अन्तरंग संबंधों तथा प्रेम–प्रसंगों के पारम्परिक बधाई गीतों में बधाई नृत्य का हर रंग खिलता है, ऊपर से बधाई नृतय के बेजोड़ संगीत की संगति से बधाई लोक नृत्य की छवियां दर्शक, श्रोताओं की आंखों में सदैव के लिए टंक जाती हैं।

बधाई नृत्य मुद्राएं :–

बधाई नृत्य मूलरूप से ढपले के आधार पर बधाई गीत गाकर किया जाता है। इसलिये बधाई के सारे वाद्यों में सबसे ऊपर ढपले की थाप का स्वर होता है। बधाई नृत्य की मूल पहचान भी यही है। बधाई नृत्य की सारी मुद्राएं ढपले, ढ़ोलक, मृदंग, लोटे की लटक, धुन या ताल पर चलती है। नृतय के आरम्भ से अन्त तक ढ़पले बजने वाली कहरवां और दादरा ताल सबको बांधे रखती है। बधाई नृत्य की मुख्य मुद्राएं हाथ, पैर, कमर, घुटने, गर्दन और आंखों के माध्यम से संचारित होती हैं। स्त्रियां

घूंघट पकड़कर विभिन्न पदचापों द्वारा नृत्य करती हैं। कभी पल्लू पकड़कर वर मांगने की मुद्रा तो कभी खुशियों को झोली में डालने की याचना वाली मुद्रा, कभी सूपा, कभी टोकनी लेकर विभिन्न खेती किसानी मुद्राओं का संयोजन करना बधाई नृत्य की खासियत है। पैरों के बल लय–ताल के साथ धीरे–धीरे खिसकना, दोनों हाथों को क्रम से सिर से नीचे की ओर जाकर पुनः सिर तक लाना बधाई नृत्य की खास पारम्परिक मुद्राओं में से एक है। इसे शीतला माता की मनौती मुद्रा भी कहते है, जो सबसे सुन्दर और आकर्षक होती है।

दक्ष नर्तक इस मुद्रा की आदायगी में जान डालते हैं तब बधाई नृत्य शिखर पर पहुंच जाता है। पुरुष नर्तक भी पुरुषोचित मुद्राएं करने में कोई कसर नहीं रखते हैं। बधाई में पुरुषों की आंगिक चेष्टाएं अत्याधिक सधी हुई और लय–तालबद्ध होती हैं, जबकि स्त्रियों की अंग भंगिमाएं कोमल काव्यात्मक होती हैं। काव्यात्मकता बधाई नृत्य की विशेषता भी है। कॉछ की साड़ी पुरुषों की चुस्त पोषाक और बुन्देलखण्ड की मिट्टी की चुस्ती–फुर्ती, शौर्य, साहस और प्रेम श्रृंगार बधाई नृत्य की पदचापों, हाथ की मुद्राओं, कमर की लटक ओर चेहरे के हाव–भाव में सहज कारण हैं कि बधाई नृत्य में राई नृत्य जैसी फिरकी अथवा चकरी का अभाव है बल्कि बधाई नृत्य सामूहिक होकर भी व्यक्तिगत् नृत्य के लिए नर्तकों को अधिक अवकाश प्रदान करता है। ऐसे सामूहिक

नृत्यों में गोलाकार, समानान्तर, एकान्तर, कोणीय, अर्द्धचन्द्राकार, सर्पिली गतियां संरचनाएं बनाने की गुंजाइश होती है। वृत्त से जोड़ी से बाहर निकल कर विभिन्न आंगिक मुद्राओं को करने के अवसर भी बधाई नृत्य में सबसे अधिक होते हैं, जिसमें नर्तक अपने स्वयं के कुछ कला—करतब भी दिखाते हैं। जैसे जलते दियों की चकरी घुमाना अथवा मुंह में तेल भरकर पलीता से आग की ज्वालाएं उठाना आदि शामिल हैं। ऐसे कला कौशल बधाई नृत्य में मंच पर रात्रि के समय किये जाते हैं। नृत्य में जीवन की विभिन्न गतिविधियों के प्रसंग गीतों के साथ प्रस्तुत होते हैं।

बधाई नृत्य में बधाई ताल बजाई जाती है। जब किसी स्त्री को नाचना होता है जो वह बाजे वालों को बधाई बजाने का आग्रह करती सुनी जाती है। चूंकि अन्य किसी दूसरी विधा में बधाई ताल का उपयोग नहीं होता, इसके कारण भी बधाई नृत्य का नाम पड़ा हो। बधाई ताल मूलतः ढपले और मिरदंग पर बजाई जाती है। बधाई ताल छह मात्र काल की मानी जाती है। बधाई का ठेका आम विरामों में द्रुत गति से बजाया जाता है। ढ़ोलक, ढ़फ और मिरदंग की ताल मात्राएं सर्वथा अलग होती हैं, उन्हीं किन्ही तत्घातों में अभिव्यक्त नहीं किया जाता है क्योंकि लोक की समस्त नृत्य परम्परा भी वाचिक ही हैं, उसका कोई लिखित शास्त्र नहीं है।

''धीग धा SS धीक धिनक, तीकता SS तीक तिनक''

बधाई नृत्य मूलतः विषमलय में चलता है। बधाई मध्यताल से प्रारमी होकर अन्त में द्रुत हो जाता है। नृत्य वादन इतना द्रुत हो जाता है कि नाचने वाली स्त्रियॉ तथा ढ़ोलक मिरदंग वाद की क्षमता पर भी अविश्वास होने लगता है। विषमलय के समस्त पुरुषोचित नृत्यों में भी यही स्थिति होती है

विवाह में नव—वधु की नृत्य झिझक तोड़ने के लिए भी बधाई नृत्य का उपयोग मुंह दिखाई में किया जाता है। नववधु और झिझक वाली महिलाओं को बलात् बधाई नृत्य में शामिल किया जाता है। ऐसी महिलाओं की अनियंत्रित मुद्राओं का सब लोग खूब मजा लेते हैं।

बधाई गीत :—

नैना बंद लागे कहियो रे, चोली बंद लागे कहियो हो
खजूर के पेड़ से सरग टूटो, जे समधी मिलें सो करम फूटो
नैना बंद लागे कहियो ....

पीपर का पत्ता हिलत नइयां, इन समधी की बैइक उठत नइयां
नैना बंद लागे कहियो ....

टूटी टपरिया के आकें दिखये, इन समधी के ठनगन हमें न सुहाय
नैना बंद लागे कहियो ....

घटिया खाले टंगो मृदंग, इन समधी के जी खों बदों हुरदंग
नैना बंद लागे कहियो ....

आले की सब्जी घुइयां की साग, निगल चलो समधी जुदेया है रात
नैना बंद लागे कहियो ....

घटिया खाले लगो निबुआ, टोरन ने जइयो बंधो तिंदुआ
नैना बंद लागे कहियो ....

अरसी की टटिया जबर बेड़ा, समधी हमारे सो बेई लेड़ा
नैना बंद लागे कहियो ....

ऐसे ऐसे कहन लगातें हुए गीत आगे बढ़ता जाता है।

जन्म गीत :—

बाजे—बाजे बधाये, आज बहू के लालन आये,
मोरी भौजी के लाला भये ...

नंद लाल भये, मैंने खबर जो पाई आधी रात,
अबे भौंरे को सुनरा के जेहे बटुर भौंरे को सुनरा के जे हैं

उठो मोरे राजा खोलो कुची, तारे ऐचो मुहरें पचास
अब भोरे को सुनरा के जैहें।

बधवा गीत :–

बधाव ल्याई ननदी अरे सावरिया,
कहां से आई पीपर कहां से आई सोंठ

कहां से आई ननदी अरे सावरिया,
सागर लाई पीपर, झांसी से ल्याई सोंठ

पन्ना से आई ननदी अरे सांवरिया,
काहे में आई पीपर काहे में आई सोंठ

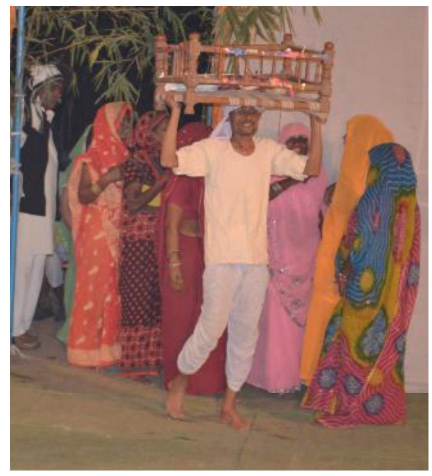

काहे में आई ननदी अरे सांवरिया
पुडिया में आई पीपर डब्बा में आई सोंठ

म्याने में आई ननदी अरे सांवरिया
काहे खों आई पीपर काहें खो आई सोंठ

काहें खों आई ननदी अरे सांवरिया
जच्चा खों आई पीपर बच्चा खों आई सांठ

नेग खों आई आई ननदी अरे सांवरिया।

साक्षात्कारों से तो ऐसा विदित होता है कि नृत्य का प्रारम्भ त्रेता युग से हुआ होगा। यहॉ इस संबंध में गीत भी प्रचलित हैं – *''जनम लये रघुरैया, अवध में बाजे बधैया''*

गीत से ऐसा विदित होता है कि श्रीराम के जन्म के समय भी बधाई का प्रचलन था। बधाई नृत्य संस्कारी नृत्य भी कहा जा सकता है क्योंकि पुत्र ने जन्म के समय बधाई नाची जाती है, विवाह के समय भी। जीवन के दो महत्वपूर्ण संस्कारों के साथ बधाई जुड़ी है इसलिए इस नृत्य को संस्कार विषयक कहना ही उचित प्रतीत होता है। पुत्र जन्म में दस्टोन के समय प्रसूता के मायके से बधावा आता है। उसकी ननद भी बधावा लाती है इस अवसर पर बधाई होती है। नृत्य के उद्देश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि बधावे उत्सव पर किये जाने के कारण ही इस नृत्य का नाम बधाई पड़ा हो।

इस नृत्य में पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों की भागीदारी भी होती है। बधाई में उम्र, जाति, वर्ग आदि का बंधन नहीं होता। बस यह तो मन की उमंगों का प्रदर्शन है। बधाई नृत्य तो है ही लेकिन इसमें जो ताल बजता है उसे बधाई कहा जाता है। यहॉ वादकों से कहा जाये कि बधाई बजाओ तो वे वही धुन बजायेंगे जो बधाई नृत्य में प्रयुक्त होती है। इसलिए नृत्य के साथ ताल भी बधाई के नाम से जाना जाता है। बधाई नृत्य का आधार लय, ताल है, लेकिन गीतों के आधार पर बधाई नृत्य का कलात्मक विस्तार और अधिक हो जाता है।

बधाई नृत्य में प्रयुक्त गीतों का विषय प्रायः श्रृंगार, हास्य व्यंग परक होते हैं। वर्तमान में बधाई नृत्य स्टेजों पर भी अपनी पहचान बनाये हुए हैं। इस नृत्य के प्रदर्शन विदेशों में भी हुए हैं तथा उनकी अपनी पहचान भी बनी है। मूलरूप से बधाई नृत्य ढ़पले के आधार पर किया जाता था। संस्कारों में आज भी बधाई ढ़पले पर ही बजती है। ताल पक्ष में दादरा एवं कहरवॉ प्रयुक्त होता है। यह नृत्य इतना सहज सरल है कि इस पर कोई भी अनाड़ी नृत्य कर सकता है।

लांगुरिया नृत्य गीत

लांगुरिया ग्वालियर–चंबल क्षेत्र का महत्वपूर्ण लोकप्रिय गायन है। राजस्थान के करौली में कैला माता के मंदिर में लांगुरिया पूजन का महत्वपूर्ण स्थल है। वर्ष में दो बार नवरात्र का पर्व होता है, चैत्र तथा क्वांर के महीनों में। इन अवसरों पर मुख्यतः स्त्रियों द्वारा लांगुरिया गायन विशेष रूप से प्रचलित है। पुरूष भी लांगुरिया गाते हैं। लांगुरिया शब्द के बारे में अलग–अलग धारणायें हैं।

एक मत इस तरह से है कि त्रेता में जब राम–लक्ष्मण का अपहरण करके अहिरावण पाताल ले गया था उस समय पवन पुत्र हनुमान ने अहिरावण से राम–लक्ष्मण को बचाया था। तब उस समय हनुमान से प्रसन्न होकर देवी ने हनुमान की पुत्रवत कामना की तो हनुमान ने स्वयं को देवी की भक्ति में समर्पित कर दिया। यहीं हनुमान लांगूल (पूंछ) के कारण लांगुरिया कहलाए। दूसरी धारणा के अनुसार चिकुअरि देवी ने पुत्र की लालसा में अपनी जटाओं से दो भैरव उत्पन्न किये। बांई जटा के काले तथा दांई जटा से लाल भैरव की उत्पत्ति हुई। लाल भैरव ही लांगुरिया कहलाये। देवी मंदिरों में देवी की मूर्ति के सन्मुख कुछ आगे दोनों ओर इन्हीं लांगुरियों (हनुमान तथा भैरव) की मूर्तियां मिलती हैं। ये लांगुरिया देवी के रक्षक पुत्र माने गये हैं तथा देवी की अगवानी करते हैं। कहा जाता है कि देवी जी के दर्शन से पूर्व इन लांगुरियों को प्रसन्न करना आवश्यक है। इसके बिना देवी दर्शन संभव नहीं है।

लांगुरिया की उपासना में गाये जाने वाले ही ''लांगुरिया'' कहलाते हैं। हर गीत की प्रथम या दूसरी लाइन में लांगुरिया शब्द आता है। इस क्षेत्र में हरेक गांव के बाहर पीपल पेड़ के नीचे चबूतरे पर छोटे से मंदिर में लांगुर की प्रतीक मूर्ति स्थापित होती है या उसी पीपल की जड़ में एक पत्थर स्थापित होता है जिसे पथवारी कहा जाता है। यात्री जब भी देवी दर्शन (जात) को जाते हैं तो इसी पथवारी से उनकी यात्रा प्रारम्भ होती है। उनको पथवारी तक पहुंचा कर

जब स्त्रियां घर वापस आती है तो पुरूष यात्रियों के वापस लौटने तक नित्य ही यह गायन चलता है। जिसमें लांगुर से प्रार्थना की जाती है कि उनके पुरूष कुशल रहें तथा उनका घर वैभव से परिपूर्ण रहे। इन दिनों झुण्ड के झुण्ड स्त्री–पुरूष गाते–बजाते मंदिर को जाते हैं।

गीतों में स्त्रियां लांगुर को पति तथा रक्षक भावन से लक्षित करती हैं। जोगिन अर्थात् स्त्री का प्रतीक होता है। कहीं–कहीं बच्चों के लिए भी लांगुरिया का प्रयोग होता है। लांगुरिया गीतों में प्रायः देवी भक्ति की अभिव्यक्ति लांगुरिया को उनके रक्षक सेवक के रूप में परिलक्षित होती है। लेकिन आधुनिक गीतों के विषय पारिवारिक, स्त्री–पुरूष की नौंक–झौंक उसमें सास, ससुर, जेठ, देवर आदि का नाम भी प्रकट होता है। देवी के मेला जाने, उनके दर्शन करने, उन्हें भेंट चढ़ाने आदि का वर्णन भी गीतों में होता है। कहीं–कहीं गीतों के साथ नृत्य भी होता है। पुरूष पीले रंग का झबला तथा गले में घुंघरुओं की माला पहनते हैं। जिनके पट्टे, छाती तथा पीठ का क्रास बनाते हुए कलात्मक बने होते हैं। नर्तक पांवों में घुंघरू बांधते हैं, इनमें मुख्य वाद्य नगाड़ा, ढ़ोलक, चिमटा, झांझ, मजीरा, झींका आदि प्रयुक्त होते हैं।

(लोककलाकर श्री दयाप्रसाद सिन्हा)

दो दो लांगुरिया जने हैं, दो दो लांगुरिया
देवी मैया ने इक संग जने हैं, दो दो लांगुरिया

इक लांगुरिया कारो कारो, दूजो लांगुर लाल ....
हर दम संग रहे सेवा में, चले मटकनी चाल ....

एक लिए त्रिशूल हाथ में, एक ढोंरि रहो चौर
करैं भक्ति गुण गान प्रेम तें, जगदम्बा की पौर ....

शोभा अधिक विशाल, भवन की महिमा कही न जाय
दिव्य देवता दर्शन करि–करि, पुण्य रहे बरसाय ....

आदि भवानी कल्याणी मां, रूद्राणी अवतार
दोऊ सुनत कूं देख कें मैया, है रही खुशी अपार ....

देख देख अपने लांगुर कूं मैया रही हरषाय
एक लियो है गोद, एक कू पलना रही झुलाय
देवी मैया ने इस संग जने हैं, दो दो लांगुरिया ....

अर्थ : उक्त लांगुरिया गीत में दो लांगुरियों का चित्रण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि देवी मां ने दो लांगुरियों को पैदा किया था। एक काले रंग के तथा दूसरे लाल रंग के।

माता ने एक साथ दो–दो लांगुर पैदा किये, उन दोनों में से एक श्याम वर्ण का है तथा दूसरा लाल वर्ण है। वे दोनों माता की सेवा में हमेशा रहते हें। एक लांगुर अपने हाथ में त्रिशूल लिये हैं तथा दूसरा मां को चमर ढुराता है। भक्तगण माता के दर्शनों को आते हैं, वे उनके गुणगान करते हैं। मां के मंदिर की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वर्ग के देवता भी मां के दर्शन करके उन्हें पुष्प अर्पित करते हैं। वे मां आदि शक्ति हैं सबका कल्याण करने वाली हैं। वे रूद्राणी भी हैं व अपने दोनों पुत्रों को देखकर हर्षित होती हैं। उनके दोनों बालक अभी छोटे ही हैं। वे एक को गोदी में लिये हैं तथा दूसरे को झूला में लिटाकर उसे झुला रहीं हैं।

कैला मैया के भवन में घुटवन खेले लांगुरिया
घुटवन खेले लांगुरिया, के सरपट दौड़े लांगुरिया, कैला मैया ....

ऊंचो–नीचो भवन बनो है, सिढ़ियें लगीं हजार
देश–विदेश के जाती आये, बोलें जै–जैसकार, कैला मैया ....

आठ पहर चौसठ पल तेरो, भवन ने खाली होय
कैला मैया के भवन में,

कारी तिल में नाय कें मैया तेरे चरन परे
पान सुपारी धुजा नारियल, कुंकुम बीच चढ़े

अगर ताल को धरो उठानों, बाको देव चढ़ाय,
गोरी को लाल है मेरो वाही लेव उठाय
कैला मैया के भुवन में घुटवन खेले लांगुरिय।।

अर्थ : केला माता के मंदिर में लांगुरिया घुटनों पर चल रहा है। वह खेलता है, कभी दौड़ता भी है। माता का भवन ऊंचा–नीचा बना है। इसमें हजारों सीढ़ियां लगी हैं। माता के हजारों भक्त उनके दर्शन को आते हैं तथा जयकारे की गूंज उठती रहती है। मैया का भवन हमेशा भक्तों से भरा रहता है, वह कभी खाली नहीं होता। भक्त तिल स्नान करके माता का पूजन करते हैं उन्हें पान–सुपारी, ध्वजा–नारियल, कुमकुम आदि चढ़ाते हैं। तत्पश्चात् अगरबत्ती, धूप दीप जलाकर उनका विधिवत् पूजन करते हैं।

कर रओ लांगुरिया विनती कर रओ लांगुरिया,
दर्शन दै दे शेरां वाली विनती ....

मैया केवल आपको री रहो भरोसो मोय
रहो भरोसे मोय री मैया, रहयो भरोसो मोय

अरे छव दिखलाय देय आशा मोरी,
तबही पूरी होय, विनती कर रओ ....

सात दीप नवखंड में तेरी रही है कीरत छाय,
रही है कीरत छाय लंगुरिया, रही है कीरत छाय,

माया तेरी अजब निराली, भेद न कोई पाय,
दर्शन दै दे शेरां वाली ....

बड़ी दूर से आयो मैया, ठांड़ो तेरे द्वार
आशा मेरी पूरन कर दें, हरले कष्ट अपार
दर्शन दै दे शेरां वाली ....

भारी खुशी मनाय री मैया, कृपा जो तेरी होय,
अरे पान सुपारी धुजा नारियल, भेंट चढ़ाऊं तोय,

दर्शन दै दे शेरां वाली, विनती कर रओं लांगुरिया।।

अर्थ : लांगुर माता से विनती कर रहा है कि हे शेरांवाली माता मुझे दर्शन दे दो। मुझे इस संसार में केवल आपका ही भरोसा है। जब आप मुझे दर्शन दे देगी तभी मेरी मनोकामना पूरी होवेगी। आपकी कीर्ति सातखण्ड तथा नौ दीपों में छाई है। आपका कोई भेद नहीं जान पाया। मैं बड़ी दूर से आया हूँ, आपके द्वार पर खड़ा हूँ, मेरी आशा आप पूरी कर दें, मेरे अपार कष्टों को हर लें। आप मेरी मनोकामना पूरी कर देंगी तो मैं आपको चढ़ावा चढ़ाऊंगा।

मैं तो जाऊंगी करोली धाम, ले चल मोहे बारे लांगुरिया,
मेरी उगड़ पड़ोसन सब जावे, सब देवी का दर्शन पावें
सब छोड़कें घर का काम, लै चल मोरे बारे ....

मैं तो मां को भेंट चढ़ाऊंगी, मां के मेले में जाऊंगी
मेरे मन में बसा है राम, लै चल मोहे ....

चाहे सास लड़े चाहे ससुर लड़े,
जाना तुमको तो जरूर पड़े
चाहे ननद करें बदनाम, लै चल मोह ....

चाहे कोई कहे मैं न मानूं, मैं पूरा करूं जो मन ठानूं
मैं तो पूजा करूं सुभो शाम, लै चल मोहे ....
मैं तो जाऊंगी करौली धाम ....

अर्थ : मैं करोली धाम माता के दर्शनों को जाना चाहती हूँ, हे लांगुर मुझे वहां ले चलो। हमारे अड़ौस–पड़ौस में सब माता के दार्शन को जा रहे हैं, इसलिए सारे कामकाज छोड़कर मुझे भी वहां ले चलो। मैं माता के दर्शन करके उन्हें भेंट चढ़ाऊंगी। मेरे जाने में चाहे मेरी सास–ननद मुझे बदनाम करें लेकिन मैं किसी

की परवाह नहीं करूंगी, मैं अपने मन की मुराद पूरी करूंगी, माता के दर्शनों हेतु आऊंगी।

मैंने बोली है करोली की जात लांगुरिया,
दर्शन को आना कानी मति करे,

हॉ बारे लांगुरिया नैनन सुरमा डारकें,
बिंदिया लई है लगाय लांगुरिया दर्शन ....

हॉ बारे लांगुरिया हांतन चुड़ियां पैन कें,
और मेंहदी लगाई दोऊ हांत लांगुरिया दर्शन ....

हॉ बारे लांगुरिया साड़ी तो पैनी वारे गोट की,
और साया चमकत जात लांगुरिया दर्शन ....

हॉ बारे लांगुरिया खरचा को पैसा मैंने रख लियो,
तू तो निरथक चल मेरे साथ लांगुरिया दर्शन, को आना–कानी मत करे।।

अर्थ : मैंने माता के स्थान पर जाने का बोलना किया था इसलिए हे लांगुर तू वहां मुझे ले चल। इसमें आना–कानी मत करना। मैंने वहां जाने के लिए अपनी आंखों में सुरमा लगा लिया है, माथे पर बिंदिया लगा ली है। मैंने हाथों में मेंहदी लगाकर चूड़ी पहन ली है। मैंने रेशमी साड़ी जिसमें जरी–गोट लगी है, पहनकर तैयार बैठी हूँ। मुझे करोली माता के दर्शन करा दो। खचे के लिए रूपया–पैसा भी रख लिया है।

मोय चिलम भरत दिन जाय लांगुरिया,
बड़ो रे पिवैया गांजे को,

मैंने नौ पुड़िया गांजो वो दव
और दस मन वो दई भांग, लांगुरिया ....

मैंने नौ पुड़ियां गांजो सींचो,
और दस मन सींची भांग, लांगुरिया ....

मैंने नौ पुड़िया गांजो काटो,
और दस मन काटी भांग, लांगुरिया ....

मैनें नौ पुड़िया गांजो पीलव,
और दस मन पी लई भांग, लांगुरिया ....

ऐसे घोंटी भांग लांगुरिया जैसे गाड़ी खीर,
घर वारे तो जाने मर गयो, आप नशे के बीच

मोय चिलम भरत दिन जाय लांगुरिया,
बड़ो रे पिवैया गांजे कौ ....

अर्थ : मुझे सारा दिन चिलम भरते हुए बीतता है। मेरा लांगुरिया गांजा पीने का बड़ा शौकीन है। मैंने उसके लिए नौ पुड़िया गांजा बो दिया तथा दस मन भांग बो दी है। क्योंकि वह नशे का आदी है। मैंने नौ पुड़िया गांजा सींचा, निंदाई की, उसे काटा तथा दस मन भांग बोकर उसे काटा है। लांगुरिया ने नौ पुड़िया गांजा पी लिया, दस मन भांग पी ली। उसे नशा चढ़ गया। यह देख घर के लोग इकट्ठे हो गये, वे उसे देखकर मरा हुआ समझ बैठे लेकिन वह तो नशे में मदहोश था।

जल्दी करले तू तैयारी मेले जाऊं लांगुरिया
जाऊं लांगुरिया मैं मेले जाऊं लांगुरिया
रे करले जल्दी तूं तैयारी मेले जाऊं ....

झुमका पहनूं नथनी पहनूं, पायल घूंघर वाली
नौ लड़ियों को हार गले में, माला मुतियन वाली
जल्दी कराले तूं तैयारी मेले जाऊं ....

की सिंगार चलूं मै। जुगनियां, लांगुर तेरे संग
मैया के दर्शन करने को, मन में उठी उमंग
करेले जल्दी तू तैयारी, मेले जाऊं लांगुरिया।।

अर्थ : अरे लांगुर तू मेले में जाने के लिए तैयारी कर ले, मैं मेला जाना चाहती हूँ। मेला जाने के पूर्व मैं नथनी पहनूंगी, पायल घुंघरू वाली पहनूंगी तथा अपने गले में नौलखा हार पहनकर जाऊंगी। मैं माता के दर्शन हेतु सोलह श्रंगार करके जाना चाहूंगी। तू जल्दी से तैयारी कर ले, मैं माता के मेले में जाऊंगी।

मैं मेले में खोय जाऊं, हाथ मति छोड़े लांगुरिया
अरे छोड़े लांगुरिया हाथ मति छोड़े लांगुरिया ......

जगे जगे पै जोगन नच रयी, रओं आनंद है छाय,
अरे हांत पकर में नचूं तेरे संग, ऐसी मन में आय,

मैं तो नागन सी लहराऊं, हाथ मत छोड़े लांगुरिया ......
भांत–भांत की लगी दुकानें, चौपट लगो बजार,

लोग लुगाई सौदा लै रये, हैं रये हैं बटवार,
अब मैं मेला में खो जाऊं, हांथ मत छोड़े लांगुरिया ......

अर्थ : मैं मेले में इतनी बड़ी भीड़ में कहीं खो न जाऊं इसलिए तू मेरा हाथ पकड़कर चलना। हाथ मत छोड़ना। मेले में जगह–जगह पर जोगनी नाच रही हैं मैं भी तेरे साथ नाचना चाहती हूँ लेकिन मेरा हाथ न छोड़ना। मेला में कई तरह की दुकानें लगी हैं। सब अपनी–अपनी खरीददारी कर रहे हैं। तू भी खरीददारी करवा देना, लेकिन मेरा हाथ न छोड़ना।

मैं जाय मरूंगी पंजाब लांगुरिया,
मोहे देखड़ मत अइयो, न लौटके वापस आऊंगी

दिन रात करेगा मोहे या लांगुरिया,
मोह देखन मत अइयो ....

तोहे ऐसा नाच नचाऊंगी,
तोसे बात सारी मनवाऊंगी,

तोहे ऐसा करूं, बरवाद लांगुरिया,
मोहे देखन मत अइयो ....

न संग तोहे ले जाऊंगी,
तोहे घर में छोड़ के जाऊंगी,

नहीं करती हूँ मैं मजाक लांगुरिया,
मोहे देखन मत अइयो,

मैं तो जाय मरूंगी पंजाब ....

अर्थ : अरे लांगुर में पंजाब में जाकर मर जाऊंगी, तुम मुझे देखने मत आना। मैं तुझे छोड़कर जाऊंगी, तू मुझे याद करता रहेगा लेकिन वापस नहीं जाऊंगी। मैं तुमसे नाको चने चबवाऊंगी अपनी सारी बात मनवा लूंगी। मैं जो कह रही हूँ वह करके दिखा दूंगी।

गौरा सोय गई पांय पसार, मजा शिव लैगव लांगुरिया,
लै गव लांगुरिया मजा शिव लै गव लांगुरिया,

शीतल मंद सुगंध

जो धन चाहे लेन न पाई, करे नैन दोई बंद,
रसिया बैठो हरियल डाल मजा, शिव लै गव लांगुरिया

कारन जोन गई थीं गौरा,
सो सब दियो विसार,

थोड़ी कथा सुनी गौरी ने, सुअना पूर्ण समाई,
कथा भई जब बंद, तब मन में बहुत पछताई,

शंकर जी गौरी से बोले, क्यों छा रई उदासी,
अमर कथा रस पी नहीं पायो,

रह गई गौरा प्यासी,
गौरा सोय रयी पांय पसार,

मजा शिव ले गव लांगुरिया।

अर्थ : माता गौरा तो सोती रहीं लेकिन शिवजी ने जो भी कथा सुनाई वह तोते ने सुन ली और उसने सब पुण्य ले लिया। गौरा ने तो थोड़ी ही कथा सुनी थी और सुगंधित हवा के झोंकों के कारण उनकी आंख लग गई इसलिए वे कथा वे वंचित रह गईं। तोता दत्तचित्त होकर कथा सुन रहा था, उसका लाभ लिया।

दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लांगुरिया,
अकेलो लांगुरिया रे अकेलो लांगुरिया, दो–दो ....

बड़ी जोगनी जो कहे रे बैंदी लईये मोय, दो–दो ....

बड़ी जोगनी जों कहरे रे कुंडल दईयो मोय,
हॉ छोटी जोगनी जो कहे रे झाले इलयो मोय, दो–दो ....

बड़ी जोगनी जों कहे रे करधुनियां लईयो मोय,
छोटी जोगनी जों कहे रे कंगन लईयो मोय, दो–दो ....

सुन–सुन बातें दो जोगन कीं रहो लांगुरा रोय,
दो–दो नारी कोई मत करियो बड़ो फजीतो हो,
दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लांगुरिया,

अर्थ : दो–दो स्त्रियों के बीच में अकेला व्यक्ति परेशान रहता है। इस गीत में भी कुछ इस तरह का चित्रण है। एक कहती है कि मुझे अमुक जेवर ला दो तो दूसरी कहती है कि यह मुझे ला दो। इसी तरह के उधेड़बुन में वह रहता है और कभी भी उनकी पूर्ति नहीं कर पाता। इन दोनों स्त्रियों की जरूरतों को सुनकर वह पुरूष रोता है। कहता है कि कभी भी कोई दो स्त्रियां ना लाना इससे बड़ी फजीती होती है।

कुंजा फूट गयो मोटर में, प्यासी मर गई लांगुरिया
मर गई लांगुरिया रे प्यासी मर गई लांगुरिया
माता तेरी गैर में एक लम्बो पेड़ खजूर
बापै चढ़कं देखती, मेरी मैया कितनी दूर
कुंजा फूट गयो ....

माता तेरी गैल में, दो हरे कबूतर जांय
कूका दैके टेरियो मेरो जोड़ा बिछड़ों जाय
कुंजा फूट गयो ....

माता तेरी गैल मो एक कारो नाग लहराय
लोटे पीटे फनी करें और सर–सर बिलों में जाय
कुंजा फूट गयो मोटर में, प्यासी मर गई लांगुरिया।।

अर्थ : मिट्‌टी का घड़ा जिसमें पानी भरकर लाई थी वह मोटर में फूट गया। पानी न होने के कारण मैं प्यासों मरी। माता के रास्ते में एक लम्बी खजूर का पेड़ है उस पर चढ़कर देख लेती कि माता अभी कितनी दूर है। माता के रास्ते में दो हरे रंग के कबूतर जा रहे हैं। उन्हें आवाज देकर बुला लो बहन उनकी जोड़ी न बिछड़ जाये। माता के रास्ते में एक काला नाग लहराता जा रहा है वह लोट–पोट सर्र से बिल में चला गया।

(श्री लल्ला कुशवाहा, दतिया)

ये ढुढवाय ले बलम भरतार लांगुरिया
ककना तो खोई गव बालू रे मे

देहिया देहिया मारे लांगुरिया
ससुर सुने वो कछू नाई कही

सासुलिया करेगी बदनाम लांगुरिया हां रे लांगुरिया
जेठ सुनें मोसे कछू न कहें

जेठनिया करेगी बदनाम लांगुरिया हां रे लांगुरिया
ननदेऊ सुनेंगे मोसे कछू न कहें

ननदुलिया करेगी बदनाम लांगुरिया
ककना तो खोई गयो बालू रेत में।

अर्थ : अरे मेरे पतिदेव मेरा कंगना बालू रेत में कहीं खो गया है, उसे ढुढवा लो। कंगना के खोने के बारे में अगर मेरे ससुर ने सुना तो वे कुछ न कहेंगे लेकिन मेरी सासु मुझे बदनाम कर देंगी। यदि उसके बारे में मेरे जेठ ने सुन

लिया तो वे तो कुछ नहीं कहेंगे लेकिन जेठानी जरूर बदनाम कर देंगी। इसी तरह से अगर ननदोई ने सुना तो वे भी कुछ नहीं कहेंगे लेकिन ननद बदनाम कर देगी इसीलिए मेरा कंगना ढुढ़वा दो।

(कु. श्वेता गोस्वामी, टेकनपुर)

चरखी चल रयी वर के नीचे, रस पीजा लांगुरिया
पीजा लांगुरिया के रस पीजा ....

भेंस भिटोरा चढ़ गई रे, लप–लप गूलर खाय
उतर–उतर परमेसुरी तेरो, मठा सिरानों जाय
रे चरखी चर रयी बड़ के नीचे ....

बंदर चढ़ो फरास में रे, सूखी बाल चबाय
तीतुर घुस गयो आंख में, सो गंगारी सौं खास
रे चरखी चल रयी ....

भैया तेरी गैल में, एक पंडा बनावै खीर
आग जलावत मूछें जल गई, फूट गई तकदीर
चरखी चल रयी ....

मैया तेरी गैर में, देखी चार जोगनी जांय
दोई गोरी दोई सांवरी, सो सोला फुलका खांय
चरखी चल रयी वन के नीचे ....

अर्थ : बरगद के पेड़ के नीचे गन्ने के रस की चरखी चल रही है। अरे लांगुरिया जरा उसका रस तो पी लो। भैंस एक दीवार पर चढ़ गई वह लप–लप करके गूलर खाने लगी, अरी अब उतर आ तेरा मठा ठंडा हुआ जाता है। बंदर फरास में चढ़ गया वह सूखी बाल चबाने लगा। तीतर आंख में घुस गया। मात की गैर में एक पंडा खीर बना रहा था आग जलाते में उसकी मूछें ही जल गई उसकी किस्मत फूट गई।

मेरी चट्‌टो पर भई जीव जलेबी लाईदे लांगुरिया,

लाई दे लांगुरिया जलेबी लाई दे ....

ससुर हमारो बड़ो शोकिया हालई लैवे जाय,
सास हमारी बड़ी जलक्को, घूरे पै फिकवाय,
मेरी चट्टो पर गई ....

जेठ हमारो बड़ो शौकिया, हालई लैवे जाय,
जिठनी हमारी बड़ी जलक्को, घेर पै फिकवाय,
मेरी चट्टो पर गई ....

दिवर हमारो बड़ो शौकिया, हालई लैवे जाय,
दिवरानी मेरी बड़ी जलक्को, घूरे पे फिकवाय,
मेरी चट्टो पर गई ....

नंदेऊ मेरो बड़ो शौकिया, हालई लैवे जाय,
नंद हमारी बड़ी जलक्को, घूरे पै फिकवाय,
मेरी चट्टो पर गई ....

जलेबी लाईदे लांगुरिया।।

अर्थ : मेरी मीठा खाते–खाते उसकी आदत पड़ गई है। हे लांगुर मुझे जलेबियां ला दो। मेरा ससुर बड़ा शौकिया है वह जलेगबी ले आये लेकिन मेरी सास बड़ी जलने वाली है उन्होंने जलेबी घूरे पर फिकवा दी। जेठ नंदेऊ भी जलेबी लाये लेकिन उनकी पत्नियों ने जलेबी फिकवा दी।

घाघरे में आगरे छपवाय दे लांगुरिया
मैं तो केला देवी जाऊंगी
केला देवी जाऊं रे मैं तो केला देवी जाऊं ....

ताज महल की शोभा न्यारी, जामें छपी होय फुलवारी,
लाल किले को गोंट पे, छपवादे लांगुरिया, मैं तो .....

राधा की हो मूरत प्यारी, जयपुर चूदर पै गिरधारी,
जगै जगै पे जैमाता, खिलवाय दे लांगुरिया, मैं तो ....

जयपुर चूंदर ओढ़ के जाऊं, देवी पै फिर रास रचाऊं,
ढोल मंजीरा साथ में, बजवाय दे लांगुरिया, मैं तो .....

कार सिल पै जाके नहाऊ, देवी मां खों भोग लगाऊं,
नाच–नाच के साथ में, गववा दे लांगुरिया,
मैं तो केला देवी जाऊं ....

अर्थ : अरे लांगुरिया मेरे घाघरे में आगरा छपवा दो, मैं कैला मैया के दर्शन के लिये जाऊंगी। ताजमहल के साथ–साथ उसकी फुलवारी तथा लाल किला भी छपा हो। राधे जी की मूर्ति तथा जयपुर की चूनर पर गिरधर गोपाल छपें हों तथा बीच–बीच में जय माता छपवा देना। मैं देवी के द्वारा पर जाकर अपना घघरा तथा चूनर पहनूंगी। मैं वहां पर काले पत्थर पर बैठकर नहाऊंगी, देवी मां का पूजन करूंगी, उन्हें भोग लगाऊंगी।

लांगुरिया बेन बजाय, खाय लयी कारे ने
जबरे जहर मेरे जरूवन आयो, पिड़री पै बंद लगाय,
खाय लई कारे ने ......

जबरे जहर मेरे घुटवन आयो, जांगन पै बंद लगाय,
खाय लई कारे ने ......

जबरे जहर मेरे छतियन आयो, आंगे बंद लगाय,
खाय लई कारे ने ......

लांगुरिया बेन बजाय, खई लई कारे ने।

अर्थ : लांगुर मुझे काले सर्प ने डस लिया है, तुम बीन बजा दो। जब सर्प का जहर मेरे तलुवे तक आया तो पिड़री में बंद लगा देना, जब जहर घुटनों तक चढ़ा तो जांघ पर बांध देना। जब जहर छाती तक चढ़ा आया तो आगे बांध देना।

मेरे अंगना निवरिया कौ पेड़ लांगुरिया
निवरिया पै बूढ़ों बंदर चढ़ी गयो

मेरे ससुर उतारे बंदर नाय उतरे
सासुलिया को घुड़की दिखाय लांगुरिया

मेरे जेठ उतारे नाय उतरे
मेरी जिठनी की घुड़की दिखाय लांगुरिया

मेरे दिवर उतारे बंदर लाय उतरे
दोरानी को घुड़की दिखाय लांगुरिया

मेरे नंददोई उतारे बंदर नाय उतरे
नंदरानी को घुड़की दिखाय लांगुरिया।

अर्थ : मेरे आंगन में नीम का पेड़ लगा है उस पेड़ पर एक बूढ़ा बंदर चढ़ गया। बंदर को मेरे ससुर ने उतारा तो वह नहीं उतरा। मेरे जेठ ने बंदर को उतारा तो वह नहीं उतरा, वह तो जेठानी को घुड़की दिखने लगा। इसी तरह देवरी, ननदोई ने भी उसे उतारा वह नहीं उतरा।

कैसो आयो बुरो जमानो, सांची कैदे लांगुरिया,
सास बहू घर–घर में लरते, आंखे लाल दिखाय,
बेटा बाप को कहो ने माने, गारी खूब सुनाय, कैसो आयो ....

भेन भानजी बुआ भतीजी, दीने सभी भुलाय,
साली और सरहित की खातिर, देते जान लडाय, कैसो आयो ....

वेद शास्त्र रामायण गीता, पड़े न कोऊ आज,
अरे पुस्तक पड़वे छोड़, दये सब काज, कैसो आयो ....

धरम–करम मरजादा सारी, दीनी सब बिसराय,

दीनी सब बिसराय लांगुरिया, दीनी सब बिसराय,झूठी चोरी ठगी बेईमानी, करे जो मन में आय,

कैसो आयो बुरो जमानों, सांची कहवें लांगुरिया।

अर्थ : कैसा बुरा जमाना आ गया लांगुर सच कह दो। सास, बहू हरेक घर में लड़ती हैं, एक दूसरी को आंख दिखातीं हैं। बेटा बाप का कहना नहीं मानता उसे गाली सुनाता है। इस जमाने में सब रिश्ते–नाते भुला दिये गये। बहिन, भान्जी, बुआ, मौसी आदि के रिश्ते केवल साली सरहिज आदि में रह गये हैं। धर्म–कर्म, मान– मर्यादा सब कुछ भुला दिये गये। चोरी, ठगी, बेईमानी में सब कुछ शुरू हो गये हैं।

मोपै अटा चढ़ो नई जाय लांगुरिया,
एंड़ी में धमक पायल बाजे, हां वारे लांगुरिया,

धमक सुनत सासु लागे,
मोय नंद करेगी बदनाम लांगुरिया, हां बारे लांगुरिया

जेठ सुने मोसे कछू न कहें,
जेठनिया करेगी बदनाम लांगुरिया,

हां बारे लांगुरिया दिवर सुनेंगे मोसे कछू ने कहें,
दिवरानी करेगी बदनाम लांगुरिया, हां बारे लांगुरिया

मारे जियार में धक–धक होय लांगुरिया
ऐड़ी में धमक पायल बाजे, मोपे अटा चढ़ो नयी जाय ....

अर्थ : देखो लांगुर मुझसे तुम्हारे मकान की ऊंची–ऊंची सीढ़ियां नहीं चढ़ी जाती, सीढ़ियां चढ़ते में मेरे पैरों में पहनी हुई पायल के घुंघरूओं की आवाज होती है। उस आवाज से घर के लोगों की नींद खुल जाया करती है जिससे तुम्हारे घर वाले मुझे बदनाम करते हैं। एक दिन में सीढ़ियां चढ़कर आ रही थी कि सास जी की नींद खुल गई और मेरी ननंद मुझे बदनाम करने लगी। एक रोज जेठ जी की आंख खुली तो जेठानी ने घर सिर पर उठा लिया। मैं हर समय इसी चिंता में रहती हूॅ कि कोई मुझे कुछ न कहे लेकिन जितना फूंक–फूंककर कदम रखती हूॅ उतनी ही परेशानी होती है।

(श्रीमती दीक्षित, कैलाश नगर)

मेरी तेरी जोड़ी बनी है, सगाई करले लांगुरिया,
अरे करले लांगुरिया, ब्याव संग करले लांगुरिया,

जैसी दुल्हिन बैसई दूला, रूप मेरे मायके,
बारी उमर अवै लरकैयां, जोश बदन में छाय के,

मेरे लायक तुम भरतार, ब्याव तुम कर ले लांगुरिया।

अर्थ : मेरी तुम्हारी कैसी सुन्दर जोड़ी है। अब तुम मुझसे विवाह कर लो। हम दोनों हर हिसाब से सक्षम हैं फिर हमें विवाह कर ही लेना चाहिए। लगता है विधाता ने हमें एक–दूसरे के लिए ही बनाया है।

मामुलिया नृत्य गीत

बुन्देलखण्ड का विलुप्त नृत्य–गीत क्वारि बालिकाओं के द्वारा भादों, क्वांर मास के महीने में खेलता जाता है। गांव के बच्चे एक जगह इकट्ठे होकर कांटेदार झाड़ी को तोड़कर लाती हैं, जिसमें घने कांटे हों विशेष रुप से बमूरे के वृक्ष की डाली मंगाती हैं जिसमें बड़े–बड़े कांटे होते हैं।

बालिकायें रंग–बिरंगी तेवरईया के फूलों को एकत्रित करती हैं और ककड़ी, खीरा, देवल, डंगरा इत्यादि फल के टुकडे कर कांटेदार झाड़ी को फूलों एवं फल के टुकड़ों से सजाया जाता है, उस सपर चुनरी एवं आंगर कर बालिकायं नृत्य करती हुई गाती हैं तथा बारी–बारी से प्रत्येक कन्या उस सुन्दर माहुलिया को लेकर नाचती–गाती नदी तक जाती हैं। विधि विधान से पूजा–अर्चना कर बहते जल में प्रवाहित कर देती हैं और देवल गुड़ का प्रसाद बांटा जाता है। बालिकायें वापिस अपने–अपने घर चली जातीं है।।

ग्रामीण सुदीजन श्रुति के अनुसार किवंदंती है कि राजिस्थान उदयपुर की बहुत ही सुन्दर राजकुमारी थी इतनी कोमल थी कि अगर वह पानी भी पीती थी तो नसों से साफ दृष्टिगोचर होता था कि इतनी सुकुमार की फूलों के विस्तर भी उसको चुभता था। उसके किस्से देश के दूर–दराज के राज्यों, रियासतों में चर्चा का विषय थीं। हर राज्य का राजकुमार उसे पाने के लिए अनेक प्रयत्न करते थे, सुन्दरता की चर्चा चारों तरफ थी लेकिन उसकी जिंदगी काटों की तरह कष्टप्रद थी जिसकी लोक गाथायें मशहूर थीं। आज भी लोककंठ में विद्मान है।

श्रावण मास में माहुलिया के रुप में उसे याद कर बालिकायें लोकगीत गाती हैं और झूम–झूमकर नृत्य कर एक इतिहास को अपनी धरोहर के रुप में संजोये हुई हैं। लोक कलायें सीमाओं को लांघकर अपनी यात्रा करती है। एक संदेश छोड़ती हुई लोककंठ में विद्मान रहती हैं। जो समय के प्रभाव के कारण धीरे–धीरे विलुप्त होती जा रही है।

मामुलिया गीत :–

ममुलिया के आ गये लिवौउआ झमक चली मोरी ममुलिया।
जहां–जहां आजुल जू के बाग, जहां मोरी महुलिया।।

रानी मां जू देख्न गई बागन खों, सजाय ल्याई महुलिया।
ल्याओ चंपा चमेली के फूल, सजाऔ मोरी महुलिया।।

ल्याओ धिया तुरैया के फूल, सजाओ मोरी महुलया।
जहां–जहां बाबुल जू को बाग, जहां मोरी ममुलिया।।

रानी काकुल देखन गई, बनाये ल्यायाई ममुलिया।
ल्याओ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।।

जहां–जहां बाबुल जू के बाग, जहां मोरी ममुलिया।
रानी मड़या देखन गई, बाग बनाये ल्याई ममुलिया।।

ल्याओ चंपा चमेली के फूल सजाओ मोरी ममुलिया।
जहां–जहां वीरन जू के बाग, जहां मोरी ममुलिया।।

ल्याओ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
जहां–जहां काकुल जू के बाग, जहां मोरी मामुलिया।

राजी फूआ देखन गई बाग, बनाय ल्यांई मामुलिया।
ल्याओ चंपा चमेरी के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।

प्रस्तुत गीत में मामुल को लिवाने के लिये बाबुल, रानी, मां, काकी, काका, देवर, ससुर, सास अपने–अपने बाग से चंपा चमेली के बागों से होकर चंपा चमेली, तेवरैया के फूलों वाले बागों से फूलों को चुन–चुनकर मामुलिया को दुलहन की तरह सजाया गया है तथा मामुलिया मायके जा रही है।

लैइयो–लैइयों त्योरैयां के फूल,
बनैइयो नौनी मामुलिया।

लैइयो–लैइयो गेंदा के फूल,
बनैइयो नोनी मामुलिया।

मोरी लहर–लहर जीरा होय,
भैया तोरे दरसन खों।

मोरे ससुरा जानई नैई देंय,
बहु इतई से मांगों वरदान।

हांत जोर विनती करें,
मोरे जेठा जानई नई देय।

तोरे दरसन खों,
मोरी लहर–लहर जीरा होय,

भैया तोरे दरसन खों
लोरी इतई से मांगो वरदान

हांत जोर विनती करें
मोरों लहर–लहर जिरा होय

भैया तोरे दरसन खों,
मोरा देवरा जानई ने देय,

भैया तोरे दरसन खों,
भौजी घरई से मांगो वरदान,

हाथ जोर विनती करें
लैइयो–लैइयो त्योरैइया के फूल

बनैइयो नोनी मामुलिया।

मायके जाने के लिये बहु को नाना प्रकार के व्यवधान आते हैं। अपने माता–पिता को देख आऊं वह सबसे विनती करती है। सास, ससुर, देवर, ननदी, जेठ, जिठानी सभी उसको जाने से रोकते हैं कि यही माता–पिता, भाई दसरन कर लो वहां जाने की आवश्यकता नहीं है।

पूजन में मामुलिया के स्तुति गीत हैं –

चीकनी मामुलिया के चीकने पतौआ,
बरा तरें लागी अथैया।

कै बारी भौजी बरा तलें लागी अथैया,
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा,
मीठे ससुरजू के बोल।

काई कचरिया के काए जो बीजा,
काए सासजू के बोल,
कै बारी बैया, करए सासजू के बोल।

ससुर जी के बोल भले ही मीठे लगते हों, परन्तु सासजू की वाणी उतनी ही कड़ती है, जितनी कड़ती कचरिया के बीज।

जान पड़ता है कि बबूल का वृक्ष बहुतायत से पाये जाने का कारण उसकी उपयोगिता देख देव के रूप में उसकी पूजा की जाती है। यह प्राचीन अनुष्ठान का अवशिष्ट रूप जान पड़ता है।

चनदा के आसपास गौअन की रास,
बिटियां पूजें सब–सब रात,

चन्दा राम राम ले ओ,
सूरज राम ले ओ, हम घरै चले।

चंदा के आसपास मुतियन की रास,
बिटियां पूजें सब सब रात।

चंदा राम राम ले औ
सुरज राम राम ले औ, हम घरै चले।

––00––

मामुलिया सी जिन्दगी, कहुं कांटे कहुं फूल
ले ओ संवार आवसीर में, होत सबई में भूल।

लइयो लइयो चमेली के फूल,
सजइयो मोरी मामनुलिया,

सज वरन–वरन सिंगार,
सिरहयो मोरी मामुलिया।

कौना लगाये बमूला के बिरछा,
और जरिया की डार,

सिरइयो मोरी मामुलिया ....

वन तुलसी गुलबंगा बेला,
निके रची कचनार।

सिरइयो मोरी मामुलिया।
बालापन के सपने सहाने,

और अंसुअन की धार,
सिरहयो मोरी मामुलिया।

निरई जग जो पीर न जाने,
और निठुर करतार,

सिरइयो मोरी मामुलिया ....

माई बाबुल की देहरी छूटी,
छूटो वीरन नेह अपार,

सिरहयो मोरी मामुलिया,
छूट गई संग की गुइयां,

छूटी रार तकरार,
सिरहयो मोरी मामुलिया ......

मामुलिया आश्विन मास की पूर्णिमा, अमावस्या तक पितृपक्ष में बुन्देलखण्ड के गांव व शहर में कुंवारी कन्याओं का विशेष खेल होता है, जिसे मामुलिया के नाम से जाना जाता है। इस लोकोत्सव में बालिकायें बेरी की डाल को फूलों से सजाकर लाल पटका पहना कर स्त्री रूप में मानकर पास–पड़ौस सबके घरों में ले जाती हैं तथा गाती हैं –

मामुलिया के आये लिवउआ,
झमक चली मेरी मामुलिया।

ल्याओ–ल्याओ चम्पा चमेली के फूल,
सजाओ मेरी मामुलिया।

सभी मामुलिया के दर्शन कर स्नेह पूर्वक मामुलिया के पूजन तथा विदा के लिए धन देते हैं। बालिकाएं चौक पूरकर मामुलिया को उस पर रख पूजा करतीं हैं। अंत में मामुलिया के गले मिलकर विदा लेती हैं तथा उदास होकर उसे पास के नदी या तालब में विसर्जित कर देती हैं।

मामुलिया में स्त्री जीवन का दर्शन निहित है जिस प्रकार बेरी का पेड़ प्रत्येक वातावरण में बिना विशेष पोषण के फूल, फल देने की क्षमता रखता है उसी प्रकार स्त्री अपने परिवार को सद्‌गुणों रूपी फलों से सजाकर सन्तान रूपी फल तथा कांटों के समान प्रहरी बना सुरक्षा प्रदान करती है।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के अनुसार क्वार मास के कृष्णपक्ष में क्वांरी कन्याएं मामुलि या माहुलिया खेलती हैं। लोक प्रचलित शब्द है – ''मामुलिया खेल रयीं'' जिससे वह एक खेल प्रतीत होता है। लेकिन जब कन्यायें बेरी की कांटेदार शाख लेकर उसे विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सजाकर और फल, मेवादि खोंसकर लंहगा एवं ओढ़नी में मानवीकृत कर देतीं हैं तथा लिपे स्थान पर चौक पूरकर उसे प्रतिष्ठित करने के बाद हल्दी, अक्षत, पुष्पादि से पूजतीं हैं और अठवाई, पंजीरी, हलुआ, फलादि का भोग लगाती हैं, तब वे देवी सिद्ध होती हैं और पूरा खेल उनकी उपासना हो जाती है। अतएव मामुलिया की पहचान एक

प्रमुख समस्या है। यदि वह नारीरूपा मानती है, तो यह निश्चित है कि कन्याएं उसकी पूजा नहीं कर सकतीं, क्योंकि बुन्देलखण्ड में कन्या के चरण–स्पर्श सभी स्त्री–पुरुष करते हैं। यह बात अलग है कि मामुलिया कोई सती या विशिष्ट आदर्श की प्रतीक नारी हो, जैसा कि एक गीत की पंक्ति से लगता है –

मामुलिया के आ गये लिबौआ,
झमक चली मोरी मामुलिया।

मामुलिया में नारीत्व की प्रतीकात्मकता तो है, जैसे पुण्यों की कोमलता, सुन्दरता और प्रफुल्लता, कांटों की प्रखरता, संघर्षशीलता और वेदना तथा फलों की सृजनशीलता, उदारता और कल्याण की भावना सब नारी में निहित है। इन गुणों के साथ उसमें पतिव्रत्य की साधना के लिए पूरी–पूरी तत्परता है। सतीत्व की संकल्पधर्मिता के कारण वह नारी का अनुकरणीय मॉडल बन जाती है। इस प्रकार की समन्विता नारीमूर्ति देवी ही है। संजा को देवीरूपा माना गया है, इस दृष्टि से मामुलिया को देवी की लोकमान्यता निश्चित ही मिली थी।

cqUnsy[k.M dk yksd u`R; jkbZ

परिचय :

राई–नृत्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। राईनृत्य के केन्द्र में नर्तकी स्त्री होती है, जिसे बेड़नी कहा जाता है। श्री अयोध्या प्रसाद कुमुद के अनुसार राई–नृत्य कब से प्रचलित हुआ, यह खोज पाना मुश्किल है। वैसे तो बुन्देली के प्रथम कवि जगनिक के लोककाव्य आल्हाखण्ड (12वीं शती) और परमाल रासो के नाम से प्रकाशित अज्ञात कवि के रासो ग्रंथ में आल्हा–ऊदल के जन्मोत्सव वर्णन में लोकनृत्य का उल्लेख है, किन्तु राई का उल्लेख नहीं मिलता। छिताई चरित (15वीं शती) में नाद मृदंग कला परबीना, नाचहिं चतुर प्रेम रस लीना।

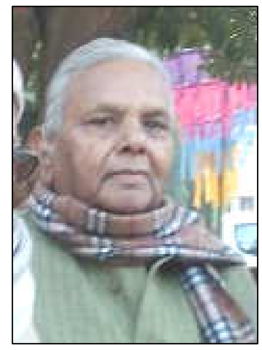

जायसीकृत पद्मावत (16वीं शती) में – जानी गति बेड़िन दिखराई, बांह डुलाय जीऊ लेई जाई और केशव कृत रामचन्द्रिका (17वीं शती) में काहू कहूं लोलिन बेड़नी गीत गाये से राई नृत्य गीत के प्रसार का आभास होता है।

प्रो. बलभद्र तिवारी के अनुसार – राई का अर्थ अनेक प्रकार से हुआ है। एक अर्थ राई के दाने से तुलना की गई जिस तरह गोल राई का दाना स्थिर नही रहता उसी प्रकार नर्तकी नृत्य में स्थिर नहीं रह पाती। दूसरे अर्थ में राई का अर्थ राजा प्रभु संप्रभु होता है। अनेक भक्त कवियों ने रघुराई (रामराजा), प्रभुराई, कैसोराई (केशवराई), जदुराई (यादव राई), शिवराई (शिव), खगराई (गरूड़) वनराई (सिंह) का प्रयोग राजा या प्रभु के रूप में किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि राई किसी महान, अंतिम और छा जाने वाली शक्ति है। लोक नृत्यों में राई ऐसा नृत्य है जो सब पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। राई की उत्पत्ति रागी से भी की जाती है जिसका अर्थ होता है कि नृत्य में ऐसा आकर्षण है कि सभी उसके अनुरागी हो जाते हैं। राई गीत एक खास राग में गाये जाते है। इसके अंतर्गत टोरा, ख्याल और स्वांग तथा फाग गाई जाती हैं। विशिष्ट अंग संचालन के साथ राई नृत्य की संज्ञा दी जाती है।

राई की व्युत्पत्ति रास से भी की जाती है इस संबंध में राई दामोदर नृत्य राधा–कृष्ण की लीलाओं के प्रसंग उठाये जाते हैं। राई आनुष्ठानिक परख तथा श्रृंगारिक होती है। राधा–कृष्ण, राम, शिव के प्रसंगों के आधार पर नृत्य किया जाता है। अधिक नृत्यगीतों के विषयों में शक्ति *''तुम दुरगा चलीं आवरे, पतियां भेजीं राम ने''* शिव *''भोला रे तोरी मूरत विसाल, मोरे अचरवा पै लिख दईयो हॉ''* केन्द्र में रहते हैं, इन्हीं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की लीला विलास किये जाते हैं, इसमें परमात्मा के राई होने का प्रत्यक्ष बोध कराया जाता है। नृत्य इस प्रकार शक्तियों के द्वन्द का प्रदर्शन होता है। राई नृत्य गीतों में श्रृांगारिक हास्य परख, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक गीतों की बानगी से राई में जिन घटकों की आवश्यकता होती है, वह टोरा, फाग, ख्याल, स्वांग, चौकड़िया, नारदी की वर्णात्मक रागों का समयकाल के हिसाब से गाया जाता है।

राई के ऐतिहासिक पक्ष पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि 1842 के एक जनविद्रोह में राईनृत्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। इसकी शुरूआत नारहट के जागीरदार मधुकरशाह बुन्देला के राज दरबार में एक घटना घटी थी। मधुकर शाह के दरबार में एक बेड़नी का नृत्य चल रहा था, उसी समय अंग्रेज सैनिकों ने घेरा डालर बेड़नी का बलात् अपहरण कर लिया। इस घटना से क्रोधित होकर जब मधुकरशाह ने अंग्रेज अधिकारी को पत्र लिखा, तो उनका जबाव था कि अब से बेड़नी सिर्फ हमारे सामने ही नाचेगी अगर मधुकरशाह को शौक हो तो वे अपनी रानियों को नचवायें। इस अपमानजनिक पत्र के मिलने से बुन्देला मधुकर शाह कुपित हो गये एवं विद्रोही हो गये। नारहट में उस समय लोधी, ठाकुर, मालगुजार संगठित हुए और जन विद्रोह की लपटें उठीं। फिर मालथौन, खिमलासा, खुरई पर कब्जा किया गया। 1857 के पहले की इस चिनगारी ने राईनृत्य की इस पहली समिधा का योगदान था।

राई नृत्य के संबंध में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना घटित हुई थी। 1954 में भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के सागर आगमन पर प्रकाशित जवाहर अभिनंदन ग्रंथ में राई मृदंगवादक श्री रघुवीर चौधरी का उल्लेख आता है। नन्ही देवरी के श्री रघुवीर चौधरी को ब्रिटिशकाल में किसी अपराध के कारण फांसी की सजा सुनाई गई थी। फांसी से पूर्व उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई तब उन्होंने कहा कि

उनकी इच्छा बेड़नी के साथ राईनृत्य करने की है। श्री चौधरी की इच्छा स्वीकार कर ली गई। राई का आयोजन बेड़नी को बुलाकर जेल परिसर में हुआ। उनके वादन–नर्तन से जेलर की पत्नी प्रभावित होकर रघुवीर चौधरी को लगने वाली फांसी की सजा माफ करने की कोशिश की गई। अंत में उसकी फांसी की सजा से उन्हें मुक्त कर दिया गया। ऐसा चुम्बकीय जादू होता है, राई नृत्य का।

किवदंती :–

ग्रामण किवदन्ती है कि ''एक बेड़नी अपनी नृत्यकला में इतनी पारांगत थी कि वह सूत (धागे) पर नृत्यकला का प्रदर्शन करती थी एवं तांत्रिक बल से धारदार हथियारों को बांध लेती थी। उसकी कला की ख्याति पूरे बुन्देलखण्ड में व्याप्त थी। नरवरगढ़ के राजा ने उक्त बेड़नी की नृत्यकला के लिये आमंत्रित किया। बेड़नी ने शर्त रखी कि अगर वह खरी उतरी तो आपको आधा राज्य देना पड़ेगा। नरवर के राजा तैयार हो गये। नरवरगढ़ के पहाड़ी स्थित किले पर धागा बांधा गया। ऐस कहते हैं कि कच्चे सूत की अंतिम छोर पर पहुंच रही थी तभी मोची ने अपनी धारदार रांपी से सूत को काट दिया क्योंकि नर्तकी रांपी को बांध नहीं पाई थी। अधिक ऊंचाई से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उक्त दोहा नर्तकी की घटना का साक्षी है :–

नरवर चढ़े ने बेड़नी, ऐरच पके ने ईंट।
गुदनौटा भींजें नहीं, बूंदी टिके ने छींट।।

इस अंचल में राईनृत्य को सामान्य जन से लेकर मालगुजारों, सामंतों, जागीरदारों और प्रतिष्ठित परिवारों द्वारा जगह दी जाने लगी थी। मनोरंजन के साधन के रूप में इस नृत्य की लोकप्रियता बढ़ने लगी। कालान्तर में सैनिकों के मनोरंजन हेतु सेना के पड़ावों में राईनृत्य होने लगा। कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि सैनिकों के पड़ाव स्थल में राई का आयोजन अर्थात राहियों के मनोरंजन का नृत्य 'राही' जो राही से राई बन गया रहा होगा।

बुन्देलखण्ड में कई स्थलों पर राई को राही कहा जाता है। धीरे–धीरे राई का विस्तार होने लगा और क्षेत्र में शादी–विवाह, दस्टोन, जन्म आदि पर राई का आयोजन किया जाने लगा। अब वह प्रतिष्ठा का नृत्य बनता जा रहा था। बुन्देलखण्ड के लोक

जीवन में राई की बढ़ती लोकप्रियता से बेड़िया परिवारों के गांव भी बसने लग गये। पहले पहल इस अंचल में मुगरयाऊ (पथरिया) में ही कुछ बेड़िया परिवार आकर एक मालगुजार द्वारा बसाये गये थे। कालान्तर में पथरिया से हबला, लिधौरा, चौकी, फतहपुर, बिजावर, छतरपुर, गंज, देवेन्द्रनगर, पन्ना, बड़ागांव, गुना आदि ग्रामों में बेड़िया परिवार बसते चले गये। गांव से अलग क्षेत्रों में इनकी बस्तियां हुआ करती थीं। सागर और दमोह, छतरपुर जिले राई के लिए बेड़िया समाजों के बसाहट होने से प्रसिद्ध होते गये। पथरिया ग्राम तो बेड़नी पथरिया के नाम से आज भी जानी जाती है। इस तरह से बुन्देलखण्ड की राई अपने पूरे रंग और रूप में विकसित होती गई। करीला में तो प्रत्येक रंगपंचमी को राई के नाम पर एक विशाल मेले का आयोजन होने लगा है। यहां पूरे प्रदेश से बेड़नियां इस दिन आतीं हैं और अपना नृत्य करतीं हैं।

समाज का एक वर्ग ऐसा भी था जो राईनृत्य को पसंद नहीं करता था। ऐसे वर्ग ने राई के विषय में अपने विचार कुछ इस तरह से लिखे थे –

पूरब पाप के कारन से,
भगवंत कथा न रूचे जिनको।

तिन एकहि नार बुलाय लयी,
नचवावत हैं दिन रातन को।

मिरदंग कहै धिक है, धिक है,
मंजीर कहे किनके–किनको।

जब हाथ उठा एक नार कहे,
इनको–इनको–इनको–इनको।।

उत्पत्ति :

राई नृत्य की नर्तकी बेड़नी बेड़िया समाज की स्त्री होती है। इस समाज की उत्पत्ति के पूर्व हमें वेश्याओं के क्रमिक विकास पर ध्यान देना आवश्यक होगा। हमें अपने वेद–पुराण, रामायण, महाभारत के अध्ययन करने पर वेश्याओं की उत्पत्ति का आभास होता है। महाभारत कालीन वेश्याओं का वर्गीकरण कुछ इस तरह से था –

- राजवेश्या
- नगर वेश्या
- गुप्त वेश्या
- देव वेश्या एवं
- ब्रह्म वेश्या।

पुराणों में अप्सराओं यथा मेनका, रंभा, उर्वशी आदि के नृत्यों एवं कृत्यों पर विस्तार से वर्णन हुआ है। इन अप्सराओं का काम नृत्य कर मनोरंजन प्रदान ही नहीं अपितु ये अपने रूपजाल में फंसाकर किसी को भी पथभ्रष्ट करने का काम भी किया करतीं थीं। वेश्याओं का प्रयोग शत्रुओं को परास्त करने हेतु होता था, जिनमें विष कन्याओं का या वेश्याओं का पर्याप्त वर्णन किया गया है।

चाणक्य ने वेश्याओं को छति पहुंचाने पर दंड देने तथा वेश्याओं की दरें निर्धारित करने संबंधी नियम बनाये थे। वेश्याओं को साधारण बोलचाल में कंजरी, गणिका आदि नामों से भले ही संबोधित किया जा रहा है अथवा उन्हें नीची नजरों से देखा जा रहा हो किन्तु प्राचीनकाल में उन्हें नगरबधुओं और जनपद कल्याणी होने का गौरव प्राप्त था। उनके प्रासादों में अमीर–उमराव ही नहीं सम्राट तक पधारते थे तथा दरबार में उनका सम्मान भी होता था।

आम्रपाली, चित्रलेखा, मदनमाला, पिंगला, वासवदत्ता, गुणवती, सहगा और रुपाणिका आदि कुछ इतिहास प्रसिद्ध वेश्यायें हुई हैं, जिनके कारण कभी भीषण युद्ध हुए तो कभी तलवारें म्यान में ही समा गई। वेश्याओं के जीवन पर अश्वघोष, कालीदास, मानहर्ष तथा भवभूति ने ही नहीं वरन् रवीन्द्रनाथ टैगोर, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य चतुरसेन, भगवती वर्मा, अमृतलाल नागर, यशपाल, सहादत हसन, इस्मत चुगताई, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार ने भी अपनी कलम उठाई है। बुन्देलखण्ड की राई नर्तकी बेड़नी को भी इसी क्रम में लिया जा सकता है।

एक सर्वेक्षण द्वारा विदित हुआ है कि बेड़िया समाज की उत्पत्ति के बारे में लोग किसी एक मत को नहीं मानते। बेड़िया समाज के बुजुर्गों का मानना है कि हमारे पूर्वज पृथ्वीराज के सैनिक रहे हैं। पृथ्वीराज की पराजय के बाद उनके सैनिक मुगलों

के कोप से बचने हेतु जंगलों की शरण ले ली थी। अपनी आजीविका को चलाने हेतु उन्होंने राहजनी शुरू की, इनकी स्त्रियां गांव–गांव जाकर नृत्य–गायन करने लगीं। हमारे परिवार बढ़ते गये और कालान्तर में हमने अपने स्थायी निवास बना लिए। स्त्रियों का पेशा बरकरार रहा जो आज भी चल रहा है। हमारे समाज में स्त्रियों का नृत्य करना गलत नहीं माना जाता।

सर्वप्रथम डा. आर.बी. रसेल के अनुसार – बेड़िया एक सामान्य नाम है जिसके अंतर्गत खानाबदोस घुमक्कड़ जिप्सी जैसे समुदाय आते हैं। जिप्सी पीढ़ी–दर–पीढ़ी खानाबदोस एवं जन्मजात घुमक्कड़ समूहों को बेड़िया कहा जाता है।

बेड़नी रंगरेज, कंजड़, गंधर्व, कबूतरी, बेड़िया, बांछड़ा आदि जातियों में होती हैं। बुन्देलखण्ड में राई–नृत्य करने वाली को बेड़नी कहा जाता है। रंगरेज बेड़नी की चर्चा लोककवि ईसुरी ने अपनी फागों में की है।

"प्रान हरन सुन्दरिया गंगिया, एकई सी दोई बेनें"

देवेन्द्र नगर की कंजड़ बेड़नी के बारे में साक्षात्कार से जानकारी मिलती है कि वे तो विवाहित होती हैं और पति की इच्छापूर्ति के लिए वे नृत्य करती हैं। इनके पति खेती करते हैं। वे पति की मर्जी से ही परपति से संपर्क, संसर्ग करती हैं।

बिजावर, छतरपुर की बेड़नियां विवाहित एवं अविवाहित दोनों तरह की होती हैं। इनका पूरा परिवार बेड़न की कमाई पर ही निर्भर होता है।

बेड़िया समाज की उत्पत्ति के बारे में प्रचलित है – लगभग दो–ढ़ाई सौ वर्ष पहले राजस्थान के भरतपुर राज्य में दो भाई रहते थे। एक का नाम था सैसमुल और दूसरे का नाम मुल्लानूर। सैसमुल के वंशज सांसी (सांसिया) कहलाए और मुल्लानूर के वंशज बेड़िया या कोल्हासी कहलाए। ये परम्परागत रूप से घुमक्कड़ और लुटेरे थे। ये चटाई की झोपड़ियों में अथवा तंबुओं में रहते थे। ये हिन्दू अथवा मुसलमान कुछ भी हो सकते थे। ये जिनके बीच में रहते उन्हीं के धर्म को अपना लेते। इसलिए कुछ बेड़िया द्विधर्मी, कुछ कबीरपंथी या सिख हुए तो कुछ पंचपीर समुदाय के।

साक्षात्कार में ही कुछ बेड़नियों ने अपने समाज की उत्पत्ति के विषय में बताया कि हम गंधर्व जाति के हैं और हमारी उत्पत्ति स्वर्गिक अप्सरा रंभा से हुई थी, हम रंभा की ही संतान हैं।

वर्तमान में यह समाज मध्य प्रदेश के सोलह जिलों में तथा देश के कई राज्यों में अलग–अलग नामों से स्थापित हैं।

सिरढ़का :– एक साक्षात्कार में कुंवर इन्द्रबहादुर कहते हैं कि एक बेड़िया परिवार सर्वप्रथम राजस्थान तरफ से आया था। उसमें पति–पत्नी एक–दो लड़की ही थीं। इस परिवार की स्त्रियां बोनी के समय खेतों–खेतों जाकर नृत्य करतीं थीं, इनके नृत्य से खुश होकर किसान इन्हें अनाज देते। इसी प्रकार कटनी के समय भी खेतों पर जाकर अनाज एकत्रित करतीं थीं। धीरे–धीरे इनके द्वारा किया जाने वाला नृत्य लोगों को पसंद आने लगा और इनकी ख्याति फैलने लगी। इनका परिवार भैंसा के ही एक मालगुजार ने मुगरयाऊ नामक स्थान पर बसा दिया। बेड़िया परिवार के पुरूष शुरू से ही अकर्मण्य रहे हैं वे अपनी स्त्रियों की कमाई पर निर्भर होते थे। रात्रि में वे राहगीरों को लूटने लगे। नृत्य की लोकप्रियता से इन लोगों ने कुछ बेड़िया परिवार बुला लिए। यह नृत्य अब गांव के चौपालों पर मालगुजारों द्वारा गरवाया जाने लगा। जो परिवार खेतों पर जाकर नृत्य करके अपनी आजीविका चला रहे थे वे अब गांवों, कस्बों में नृत्य करके बाकायदा अपना मेहनताना लेने लगे। पूर्व में तो गांव के मुखिया ही इन्हें बुलाते थे अब सामान्य लोग भी खुशी के मौकों पर इनके नृत्य करवाने लगे। पहले नर्तकी के साथ कोई सौबत नहीं होती थी, धीरे–धीरे गांव की सौबत इनसे जुड़ने लगी और नृत्य का वह रूप अब राई नृत्य के रूप में ख्यात हुआ। इस प्रकार से इनका समाज बढ़ता गया और नृत्य परिष्कृत होता गया। नर्तकी सुन्दर होतीं थीं और इनका नृत्य मनमोहक होता था, इसलिए मालगुजारों का ध्यान नर्तकी पर स्थिर होने लगा। इस प्रकार बेड़िया समाज में ***'सिरढ़का'*** नाम की प्रथा का सूत्रपात हुआ।

बुन्देलखण्ड के सागर जिले का एक बहुत छोटा गांव है 'टीला'। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में ग्राम टीला का अस्तित्व उतना नगण्य नहीं था। उस समय एक मालगुजार उस गांव में बसे थे। परिवार के मुखिया महाराजसिंह थे। उन्हें

नाच–गाने देखने–सुनने का बड़ा शौक था। उन्होंने अपनी रिस्तेदारी में एक बेड़नी का नाच देखा, उसे देखकर वे उसके रूप पर मोहित हो गये। उन्होंने बेड़नी को टीला ग्राम बुलवाया। बेड़नी भी ठाकुर के हाव–भाव से समझ रही थी कि कुछ गड़बड़ जरूर है। वह अपने परिवार के लिए कोई स्थाई सहारा चाहती थी। टीला ग्राम में उस बेड़नी ने ऐसा नृत्य किया कि महाराज सिंह उसके ऊपर ऐसा मोहित हुए कि उन्होंने बेड़नी को एकान्त में बुलाकर अपने मन की बात कह दी। उनके प्रस्ताव को सुन बेड़नी भी तैयार हो गई।

ठाकुर ने कहा कि मैं तुम्हारा और तुम्हारे परिवार का पूरा ध्यान रखूंगा, लेकिन तुमसे विवाह नहीं करूंगा। बेड़नी के पूछने पर कि उसकी हैसियत क्या होगी? ठाकुर ने कहा कि पत्नी के अलावा सब कुछ। महाराज सिंह ने उससे कहा कि वे जीवन भर उसके भरण–पोषण की जिम्मेदारी वहन करेंगे। यह कहा कि नाचने गाने का काम जारी रखने के पक्ष में है तो वह रख सकती है। उसे महराज सिंह से पत्नी के समस्त अधिकार और संतति का अधिकार भी मिलेगा, लेकिन उसकी हैसियत रखैल के जैसी होगी।

नर्तकी ने उसकी बात स्वीकार कर ली। महराज सिंह ने उस परिवार को भूमि दी, जिससे उसकी एवं उसके साथियों की गुजर–बसर अच्छी तरह हो सके। महराज सिंह का दिया हुआ वही जमीन का हिस्सा आज बेड़नी पथरिया ग्राम के नाम से जाना जाता है। अपने वचन को महराजसिंह ने पूरा किया। उस बेड़िया परिवार ने ग्राम पथरिया की नींव रखी थी, सन् 1981 की जनगणना के अनुसार वहां कुल 493 जनसंख्या थी। इस गांव में अब सिर्फ बेड़िया परिवार ही रहते हैं। धीरे–धीरे उनके परिवार बढ़ते गये। इस क्षेत्र में विवाह, जन्मोत्सव, नामकरण, तीज–त्यौहार आदि छोटे–बड़े उत्सवों में राई होती थी और बेड़नी उसमें नृत्य करतीं थीं। इस अंचल में कुछ लोग बेड़नी के नृत्य को पारिवारिक उत्सवों के लिए शुभ मानते हैं।

बेड़नी के रूप–सौन्दर्य एवं नृत्य से प्रभावित होकर या उसे देखकर धनिक पुरूष स्वयं ही प्रस्ताव रखते हैं और उनके बीच सौदा तय होता है। ये धनिक बेड़नियों

से आजीवन अनुबंध भी करते हैं, जिसे बेड़िया समाज 'सिरढ़का' कहता है। यह प्रथा आज भी जारी है।

प्रस्तुति :–

जिसे राई करवानी होती है, चाहे व ग्रामीण क्षेत्र का हो अथवा शहरी, बेड़नी को नियत तिथि पर आने की सूचना देने के लिए उसके निवास पर जाता है। जो भी राशि तय होती है उसका कुछ अग्रिम भी बेड़नी को देना पड़ता है। इसके पश्चात् सौबत के लिए भी सूचना दे दी जाती है कि अमुख दिन राई का आयोजन है। आस–पास के गांवों में बुलौआ भी दिलवाया जाता है। बेड़नी नियत तिथि पर आती है, उसे एक स्थान पर रुकवाया जाता है। कार्यक्रम के शुरू होने के कुछ पहले बेड़नी अपना सम्पूर्ण श्रृंगार करती है। उस लोकनर्तकी का श्रृंगार ग्रामीण आभूषणों से होता है।

नर्तकी के आभूषण –

- **माथे पर** जगमगाता बूंदा, सिर पर बेंदा–बिंदिया, शीशफूल, बींज।
- **कानों में** कन्नफूल, झुमकी, तरुकला।
- **नाक में** जड़ाऊ पुंगरिया।
- **गले में** हंसली, तिदानों, टकार, हार।
- **बाहों में** बांकें, बाजूबंद।
- **हाथों में** बंगरी, चूरा, कंगना, गजरा, चूड़ियां।
- **उंगलियों में** छला, अंगूठी।
- **कमर में** करधोनी।
- **पैरों में** पायल, बिछिया, घुंघरू।

नर्तकी के वस्त्र –

यौवन पर अंगिया, चोली, पोलका, चुनरिया, ओढ़नी। लहंगा बीस हाथ का चुन्नटदार, उसके नीचे चुस्त चूड़ीदार पायजामा। आंखों में डोरीदार काजल, भौंहों में दोनों ओर कनपटी तक सुनहरी टिपकियां और ओठों पर रची पान की लाली नर्तकी के सौन्दर्य को मोहक बना देती है। बेड़नी का मुख घूंघट से इस तरह ढ़का होता है

कि दर्शक उसके रूप सौन्दर्य का पूरी तरह आनंद ले सकें, इसीलिए बेड़नी की चूनर पारदर्शी होती है। नर्तकी के दाहिने हाथ में रूमाल होता है, नर्तकी के भावाभिव्यक्ति में रूमाल सहायक होता है। सिर का घूंघट और रूमाल मध्यकालीन मुस्लिमकाल की सौगात है।

संगतकारों की वेशभूषा एवं श्रृंगार – बुन्देलखण्ड में ग्रामीणजन सफेद रंग की मर्दाना धोती जो पांच मीटर या पांच गज की होती है सूती एवं टेरीकाट की, दोनों तरफ कांच लगाकर पहनी जाती है। उसके ऊपर रंग–बिरंगा कुर्ता, कुर्ते के ऊपर जाकिट (जिसे बंडी) कहा जाता है। सिर पर रंगी साफा जो पांच या साढ़े पांच मीटर का होता है। गले में रंगीन रूमाल या गमछा होता है। कलाई में फूलों वाला गजरा एवं कमर में कमर पट्टा बंधा रहता है। माथे पर रामानंदी तिलक एवं आंखों में काजल। मृदंग के ऊपर ऊन से निर्मित रंगीन फुंदनों की झूल होती है। मृदंग वादक के कानों में मुरकी जो सोने की होती है और मृदंग वादक रंगीन बाडी पहनता है जो विशेष रूप से तैयार की हुई होती है जिसमें छोटे–छोटे आइने एवं ऊन से निर्मित फूल बने होते हैं एवं अन्य वाद्य यंत्रों पर भी ऊन से निर्मित झूल शोभायमान होती हैं। नगड़िया, ढ़पला, अलगोजा एवं रमतूला इत्यादि को विशेष रूप से सजाया जाता है।

सौबत –

राई की सौबत आमतौर पर दस से बारह सदस्यों की मानी जाती है, जिसमें मृदंगिया, ढुलक्या, ढपल्या, नगड़िया, अलगोजा, बांसुरी, रमतूला, दो तारें (मंजीरा), दो झूला वादक, दो गायक तथा दो से चार तक बेड़नियां एवं एक मशालची होता है।

प्रारम्भ में सुमरनी को एक व्यक्ति शुरू करता है और आलाप लेने के बाद टोरा गीत को उठाता है। गायकों की तर्ज पर पूरी सौबत उनके द्वारा गाई गई पंक्ति को दोहराती हैं और इसी पर बेड़िनियां नृत्य करती हैं। सौबत के दो मुखिया होते हैं एक मृदंगिया और दूसरा नगड़िया वादक। वहां पर सौबत पहले से तय कर लेती है कि कौन नृत्य में आगे बढ़कर भाग लेगा और बेड़नी से प्रतियोगिता करेगा। गीत में क्रमशः आगे बढ़ने पर ताल के अनुसार मंजीरा वाले अपने मंजीरा बजाते हैं, ऐसा माना जाता है कि सौबत का साथ देने के लिए गीत और नृत्य के उत्कर्ष पर ढपले वाले,

रमतूला वाला और झांझ वाला भी नृत्य किये हुये अवसर पर संगत देता है। इस प्रकार सौबत में दस–बारह लोगों के सिवा ये अतिरिक्त वाद्य वाले व्यक्ति भी रहते हैं, परन्तु इनका काम मुख्य नृत्य में केवल संगत देने का कार्य होता है।

नृत्य की संरचना :–

राई गीत और नृत्य एक दूसरे के पूरक होते हैं। राई गीतों के बिना नृत्य साधन नहीं हो सकता। राई–नृत्य के दोनों का मर्म श्रृंगार की भावना अथवा श्रृंगार की क्रियायें होती हैं। नृत्य की केन्द्र में बेड़नी होती है। नर्तकी अपनी चंचल, चपलता, निर्भीक अभिव्यक्ति राई नृत्य की जान होती है। बेड़नी का नृत्य ऊर्जापूर्ण यौवन की श्रृंगारिक चेष्टायें और हाव–भाव से दर्शकों को बांध कर रखती हैं।

नर्तकी तथा मृदंग वादक भी सौबत के साथ गाते हैं और नृत्य का प्रारम्भ होता है। नृत्य में सौबत एक तरफ खड़ी होकर गायन–वादन करती है और मृदंग वादक तथा बेड़नी नृत्य करते हैं। सौबत तथा दर्शकों के बीच में नृत्य के लिए स्थान छोड़ दिया जाता है जिसमें नृत्य आसानी से हो सके। नृत्य में कई बार अकेली बेड़नी ही नृत्य करती है। बीच–बीच में मृदंग वादक और बेड़नी नाचते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि दोनों गाते–नाचते हुए दर्शकों के बीच भी चले जाते हैं, दर्शक के पास जाकर बेड़नी नृत्य के साथ अदायें भी दिखाती है। दर्शक उसे पैसा देते हैं।

नृत्य में कई बार मृदंग वादक बेड़नी तथा टिमकी वादक, मशालची सब साथ में नृत्य करते हैं लेकिन ज्यादातर मृदंग वादक तथा बेड़नी ही नाचते हैं। कई बार एक सौबत में दो–तीन मृदंग वादक भी होते हैं जो मौका मिलने पर बेड़नी के साथ अपने अलग अंदाज में नृत्य करते हैं एवं शारीरिक कलाओं का प्रदर्शन भी होता है जैसे स्वास्तिक बनाना, पैरामिड बनाना या आयत बनाकर उसका त्रिभुज बनाना अथवा किसी विशिष्ट मुद्रा का बनाया जाना होता है। तब संगीत की कमी को बिलम्बित में मृदंगिया टिमकी वादक और अलगोजा वाले पूर्ति करते हैं, मुख्य द्वंद मृदंगिया और नर्तकी के बीच होता है जो किसी एक की हार पर समाप्त है।

मुद्रायें : राई नृत्य की मुद्राओं में ठुमकी, चकरी, गिरदी, उड़ान, बैठकी, कोण, मोरचाल, मोरघुसन, झटका, ढ़डकचका एवं तालमेल प्रमुख मुद्रायें हैं।

ठुमकी : नर्तकी नृत्य करते हुए लंहगे के दोनों छोर बाजुओं के नीचे से पकड़कर कंधे के समानान्तर उठाती है। वह अपनी गर्दन को घुमाव देकर कमर के कूल्हे मटकाती हुई घुंघरूओं को तीव्रगति से खनकाती है यह मुद्रा ठुमकी के नाम से जानी जाती है।

चकरी : बेड़नी नृत्य में ही चक्राकार घूमती है, इस समय वह अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये रहती है। एक स्थान पर मृदंग के ताल की गति में वह घूमती है, उसे चकरी कहा जाता है।

राई नृत्य (चकरी मुद्रा)

गिरदी : मृदंग की ताल पर नर्तकी लहंगा उड़ाते हुए तीव्र गति से घूमना अपने हाथों को सर्पाकार घुमाना मथानी की तरह घुमाव लेना, इस मुद्रा में लहंगे की घूम पूरी तरह उठ जाती है, यह मुद्रा गिरदी कही जाती है।

राई नृत्य (संवेत प्रस्तुति)

राई नृत्य (लास्य मुद्रा)

उड़ान : उड़ान मुद्रा में नर्तकी वाद्यों की ताल पर मोरपंखों के जैसी मुद्रा में हाथों को फैलाकर झुलाती है, साथ ही लहंगे के दोनों छोरों को मकड़कर मोर की चाल चलकर पूरे नृत्य क्षेत्र में थिरकती है।

बैठकी : मृदंग वादक के साथ ही बेड़नी उकडू बैठकर दोनों छलांगें भरते हैं तथा आगे–पीछे चलते हैं। नृत्य में वादक और नर्तकी में होड़ सी होती है, कभी मृदंगिया उसे छकाता है तो कभी नर्तकी।

राई नृत्य का तालमेल

राई नृत्य (होड़ मुद्रा)

कोण : नर्तकी अपने लहंगे के दोनों छोरों को पकड़कर बाज के जैसा झपट्टा मारती हुई एक ओर मैदान को घेर आती है। इसी ओर मृदंगिया भी नाचता हुआ जाता है। कोण बनाते समय कभी नर्तकी आगे होती है, तो कभी मृदंग वादक।

राई नृत्य (कोण मुद्रा)

मोरचाल : नृत्य करते हुए नर्तकी मृदंगिया के सामने पलटकर कमान की तरह दूनर होकर अपना सिर मृदंग पर रख देती है और दोनों हाथों से लहंगे के दोनों छोर पकड़कर कंधों के समानान्तर उठाकर मृदंगिया के साथ नृत्य की ठुमकियां लगाती है। नृत्य की यह आकृति मोर के जैसी लुभावनी लगती है।

मोरचाल मुद्रा

मोरघुसन : नर्तकी एक स्थान पर घूमती हुई मुरेठा लगाकर पलटती है और इस मुद्रा में गर्दन का विशेष घुमाव होता है। राई नृत्य की यह मुद्रा कठिन मानी जाती है।

श्री रामसहाय पांडे एवं साथी कलाकारों के द्वारा राई नृत्य मुद्रा मोरघुसन

झटका : नृत्य में झटके के साथ ताल पर ही पैरों को पटकना, आगे–पीछे जाना। इस मुद्रा में घुंघरूओं की तीव्र खनक और लय बड़ी लुहावनी लगती है।

ढ़ड़कचका : नृत्य करते समय ही नर्तकी एवं मृदंगिया बैठ जाते हैं, धीरे–धीरे अपने दोनों पैरों को सीधा करके फैलाते हुए लेट जाते हैं, लेटे–लेटे बिना हाथों के सहारे खिसकना और चारों ओर करवटें लेना यह मुद्रा ढ़ड़कचका कहलाती है।

तालमेल : बेड़नी और मृदंगिया कदमों को एक साथ मिलाकर नृत्य करते हैं। गर्दन को बदख जैसी मुद्रा में झुकाकर आगे–पीछे बढ़ते हैं यह तालमेल कहलाता है।

उपरोक्त समस्त मुद्रायें सर्वेक्षण द्वारा बेड़नी एवं मृदंग वादकों के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त की हैं।

राई नृत्य–गीत :–

राई नृत्य–गीतों की श्रृंखला में फाग या सुमरनी गायी जाती है उसके बाद स्वांग, ख्याल, कहरवा, टोरा की फाग एवं बुन्देलखण्ड के अन्य अंचलों में राई का स्वरूप ईसुरी की फागें विशेष रूप से गाई जातीं हैं। स्वांग दो तरह से गाते हैं।

नृत्य का आरंभ सुमरनी से होता है। गीत में देवी–देवताओं का स्मरण होता है। कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु देवताओं से आग्रह किया जाता है। सौबत का ही एक कलाकार गायन शुरू करता है, उसके बाद ही संगीत एवं नृत्य आरंभ होता है।

दोहा फाग : *''पैलऊं देवी शारदा गाईये,*
फिर लिये राम के नाव ......''

सुमरनी प्रायः फाग से ही शुरू होती है जिसे नारदी की फाग या टोरा की फाग कहा जाता है, चूंकि इसमें नारदी ताल प्रयुक्त होता है, इसलिए इसे नारदी की फाग कही जाती है।

सुमरनी :–

गालऊं रे गौरा के गनेश, प्रथम मनालऊ माता शारदा हॉ ....

या

बलखों रे सुमरों हनुमान, सुर खों सुमरलऊं माता शारदा हॉ ......

फागें सुमरनी के अलावा कई तरह की गाई जाती हैं। जिनमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। कई फागों में भक्ति, लोकजीवन, प्रकृति वर्णन, देश–प्रेम आदि विषयों से संबंधित होती हैं। फाग के बाद स्वांग गायन होता है :–

1. *''नई चुनरी के छोर, राजा करोंदा में बीद गये''*
2. *तरसत नैना हमारे, आजा घनश्याम*

फाग :–

दायीं भुजा रहें शालगराम,
बायीं रे भुजारे हनुमत रहें हां।

मेरी दाहिनी भुजा पर सदैव शालिग्राम रहें तथा मेरी बांयी भुजा पर हनुमान जी रहें।

ये बाजे बारे सुर से बजैयो,
मिरदंग खो दोष लगइयो ने,
मोरे भरोसे रईयो ने।

अरे ओ बाजा बजाने वाले आप स्तर ताल से ही बाजा बजाना। वादन में मृदंग की कोई गलती न निकालना। अगर सुर ताल से बजाओगे तो गलती का सवाल ही कहां होगा, अर्थात् गलती न होगी।

बहियां रे गुदवाले मोर,
भौंरा रे गुदाले गोरे गालों पै हां।

बांह पर गुदना गोदने वाले से मोर लिखवा लेना तथा अपने गोरे गाल पर भंवरा अंकित करा लेना।

मोरे अंगनवा में गुलगैदा,
भौंरा फिर–फिर जावे रे,

भैरा फिर–फिर जावे रे,
भौरा फिर–फिर जावै रे।

मेरे आंगन में गैंदा फूला है, उसकी खुशबू से भौंरा पराग लेने हेतु बार–बार मंडरा रहे हैं।

लिख दइयो रे शालकराम,
गिरधारी रे गालो लिखो हां।

बांह पर शालिगराम लिख देना तथा गाल पर गिरधारी लिख देना।

नीले रे धरे श्यामलिया श्याम,
नीले रे भरे रे जल जमना के हां।

यशोदा नंदन कृष्ण का नील वर्ण है तथा यमुना जी के जल का भी नीला ही रंग है।

ऐसी काये लगा रये तारी भोला जागत नैया रे,
भोला जागत नैयां रे भोला जागत नैया रे,
भोला जगात नैयां रे भोला हेरत नैयां रे।

अरे भोलेनाथ ने तो तारी लगा रखी है, वे किसी से भी नहीं बोलते। पता नहीं कहीं किसी से रूठ तो नहीं गये?

बलम ने तज दईरे विहरयी असुवन धार,
बलम ने तज दई रे ....

बलम ने तज दई रे, वह रयी असुवन धार,
प्रीत करी दिल जानके रे, कर पनवेसुर बीच,

अरे दिल के कपटी बड़े, छोड़ गये अर बीच,
बलम ने तज दई रे ....

अरे कई बलम ने तज दई रे, वह रयी असुवन धार,
प्रीत तो ऐसी कीजिए जैसे लोटा डोर,

अपनी गरों फंसायके पानी लाये वीर,
बलम ने तज दई रे, वह रयी असुवन धार ....

(श्री प्रहलाद कुर्मी, अर्जनी)

मेरे पति ने मेरा परित्याग कर दिया, मुझे अभागिन की स्थिति बिन पानी के मछली की जैसी हो गई। उसके नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। उसने बड़ी लगन से अपने पति से प्रेम किया, पति को परमेश्वर माना लेकिन उसके दिल में कोई कपट आ गया तो उसने पत्नी को ही छोड़ दिया।

प्रेम तो उस लोटा डोर के सरीखा होना चाहिए जो कि डोर में लोटे का गला फंसाता है और दोनों के सहयोग से पानी भरा जाता है।

स्वांग : स्वांग गायन दो तरह से होता है, एक मुखड़ा के रूप में गाया जाता है। दूसरा स्वांग पद के साथ गाया जाता है तथा बीच–बीच में कहरवां, टोरा की फाग एवं गारी गाईं जाती हैं।

केवल वह एक लाइन ही बार–बार दोहरायी जाती है। दूसरे तरह के स्वांग पदों वाले होते हैं। जिनमें पहली लाइन संगीत के बंद होने पर पद गाया जाता है। इस तरह से स्वांग पहले की तुलना में ज्यादा अच्छे होते हैं क्योंकि गायन, वादन तथा नृत्य में परिवर्तन आता है, जिससे एक नयापन दिखाई देता है क्योंकि मात्र एक लाईन को बार–बार गाते रहने में श्रोताओं को भी वह बात महसूस होती होगी।

वन जाने हते, कैकयी खों दोष लगाये।

या

बूंदा चमकें लिलार, जैसे तरा रे भुनसरिया।

टेक 1. *तारो महाराज, जैसे बने ऊंसई तार दे .....*

टेक 2. *धीरें–धीरें बोल कोऊ सुन लैहे*

स्वांग :

बिना पानी के पान,
कैसे रहे रे मचला में।

पान के लिये पानी न हो तो वह बिना पानी के कुम्हला जाएगा।

बगिया कितनी दूर,
आ रई वास बेला की।

पता नहीं बागीचा कितने दूर हैं, क्योंकि बेला की सुगंध तो दूर से ही आ रही है।

बन जाने हते कैकई खों दोस लगाये।

श्रीराम जी को वनवास में जाना ही था, लेकिन कैकयी माता को व्यर्थ में ही दोष लगा दिया।

डोरा सात लर के,
रात के मरोरा डोरा टूट गये।

मेरे कमर की करधन सात लड़ियों की बनी थी लेकिन इतनी मजबूत होने के बाद भी रात्रि में शयन करते हुए वह सात लड़ियों का करधन टूट गया।

मारे रे दशरथ ने वान,
जिनवानो सरमन मरे हां।

महाराज दशरथ ने मृग के धोखे में आकर बाण चलाया तो वह बाण श्रवण कुमार को लगा। बाण के लगते ही उनके प्राणान्त हो गये थे।

कहां लगा दऊ तोय रे,
अरे नारियल के बिरछा।

अरे ओ नारियल के वृक्ष में तुझे कहां पर लगा दूं।

बन्देली लोकनाटय पंडित का

<u>पद वाले स्वांग</u>

गोरी विद गई मकुइया के जार रे,
गोरी बीद गई ....

अरे गोरी विद गई मकुइया के जार रे,
कौना गली तोरो माई मायको, माई मायको

अरे कौन गली सुसरार रे,
गोरी बीद गई ....

(नीरज गिरी, मेड़की)

पिया प्यारे बिना रे मोरो जीवन नैयां,
पियां प्यारे ....

आम पके मौवा गदराने, निब्बू रसयाने,
अरे कई के जब अनार शोरवी पै आये,

सोई टोर लये माली ने भैया,
पियां प्यारे ....

पहले की तुलना में पद वाले स्वांग में गायन का ढ़ंग, लय, पक्ष, संगीत पक्ष में वजनदारी आ जाती है। नृत्य में उसके साथ–साथ नर्तकी की नृत्य मुद्राओं में भी अंतर आता है।

ख्याल – गायकी के बारे में जानकारों का कहना है कि ख्याल तो ख्याल से ही गाया जाता है इसमें बुन्देलखण्ड की लगभग सभी तरह की बजौटी बजती है इसके जानने वाले हों, वो ही गा सकते हैं तथा पारंगत् मृदंग वादक ही ख्याल बजा सकता है। इसी तरह नर्तकी भी जो नृत्य में पूर्ण रूप से पारंगत हो वही सही मायने में नृत्य कर सकती है। कुल मिलाकर राई नृत्य का सबसे महत्वपूर्ण पहलू ख्याल ही है। ख्याल गायन के पहले साक गाई जाती है। साक दोहे जैसे ही होती है। साक के बाद ख्याल गाया जाता है। साक विलंबित होती है तथा ख्याल की शुरूआत भी विलंबित होती है फिर मध्यलय तथा अंत में द्रुत लय होती है। शास्त्रीय संगीत के जैसा ही ख्याल गायन राई का ख्याल होता है।

कजलवा मारे जैहो रे ...

इस तरह से राई गायन के रूप होते हैं। राई के साथ बीच–बीच में नर्तकी तथा सौबत को विश्राम देने हेतु 'स्वांग' नामक लोकनाट्य सौबत के द्वारा ही किया जाता है।

साक –*झिलमिल फरिया पाट की रे,*
हमपै ने ओढ़ी जाय ....

बालापन की दोस्ती रे,
हमपै ने छोड़ी जाय ....
आरी ये हमपै ने छोड़ी जाय ....
––

बिंदिया माथे कौ सिंगार ....
कौना ने बिंदिया लै दयी रे,
लै दयी प्यारे

आरे अब कौना चुका दये मोल,
अब कौना चुका दये मोल,

बिंदिया माथे को सिंगार,
देवरा ने बिंदिया लै दयी रे,
ले दयी प्यारे

आरे अब सैयां चुका दये मोल,
बिंदिया माथे को सिंगार ....

(बाबा खंगार, चक्क बिलैकी)

शंख बजें साधू जगें रे,
बिगुल बजे रजपूत ....

भगत सुने देवी जगें रे,
लयें खप्पर तिरसूल,

आरी ये लयें खप्पर तिरसूल ....
–––

तुम दुरगा चली आव रे,
पतियां भेजी राम ने ....

पत्तियां बांची मन मुस्कानी, मन मुस्कानी
अरे अब काहे खों राम बुलाये,

अब काहे खों राम बलाये,
पतियां भेजीं राम नें ....

(श्री साधू, कनेरा देव)

ख्याल में दादरा, कहरवा, उसके प्रकार रूपक, दीपचंदी आदि तालों की झलक मिलती है। गायन के अनुसार कई तरह के मोड़ मुरकियां आती हैं और संगीत तथा गीत और नृत्य का अनोखा रूप इसमें दिखता है। एक ख्याल 30 से 45 मिनिट में पूरा होता है। पूरी सौबत वादक तथा नर्तक के लिए सबसे ज्यादा श्रम करना पड़ता है, तभी ख्याल पूरा होता है।

बुन्देली लोकनाट्य पटवारी का स्वांग

फाग नारदी

गा लऊं रे गौरा के गनेश।
प्रथम मना लऊं माता शारदा हां।।

मैं गायन में सर्वप्रथम गौरी पुत्र गणेश का स्मरण उनके नाम के गायन से करूंगा तत्पश्चात् स्वर की अधिष्ठात्री शारदा मां का स्मरण करूंगा।

बल खों रे सुमरों हनुमान,
सुर खों सुमरलऊं माता शारदा हां।

शक्ति प्राप्ति हेतु पवनपुत्र हनुमान का स्मरण करूंगा तथा स्वर प्रदान करने के लिये शारदा मां का स्मरण करूंगा।

मारे रे लक्षमन ने वान,
टूटी रे भुजा अंगना गिरी हां।

लक्ष्मण जी ने रावण पुत्र मेघनाद पर बाण चलाया तो उनके बाण के लगते ही मेघनाद की भुआ कटकर उसके ही महल के आंगन में गिरी थी।

नीमा रे तोरी पतरी है डारी,
बैठी रे चिरैया यार फूले झरे हां।

नीम वृक्ष की पतली डाली है, वह फूलों से लदी है, उस समय अगर एक चिड़िया भी आकर बैठ जाए तो डाली से फूल झड़ने लग जायेंगे।

गोरी रे करले सिंगार,
मेड़े पै आ गये तोरे बालमा हां।

अरे सखी अब तू झटपट अपना श्रृंगार कर ले क्योंकि तेरे पति बिल्कुल समीप ही आ गये हैं।

बरिया रे तोरी गहरी है छांय,
नचें रे पलंग अलबेली के हां।

वट वृक्ष की गहरी तथा शीतल छाया होती है और उस शीतल छाया के तले एक नव यौवना की सेज लगी है।

छैला रे तोरी हुड़कत भैंस,
मारे धरे रये यार पीसने हां।

अरे छैल–छबीले तेरी भैंस की हुड़कारी से मैं भयभीत हो गई। मेरा आटा ज्यों का त्यों रखा है।

गंगा रे तोरे निरमल नीर,
तोरे रे पिये सें जग तर गये हां।

गंगा मैया का जल बड़ा पवित्र है उन पतित पाविनी गंगा का जल जो भी पी लेता है वह इस भवसागर से पार उतर जाता है।

मथुरा रे मोय लगत उदास,
मधोवन लगत सुहावने हां।

कृष्ण को मथुरा में सूनापन लगता है, लेकिन मधुवन में बहुत अच्छा लगता है।

कां गये रे ऊदल मलखान,
कां गये बछेरा रस बैंदुला हां।

ऊदल मलखान जैसे वीर कहां चले गये तथा उनके घोड़े रसबेंदुला जैसा घोड़ा कहां चला गया। आशय यह है कि उनके जैसे वीर पुरूष अब नहीं हैं।

बरिया रे तोरी गहरी है छांय,
घोड़ा रे बंदे रये मलखान के हां।

बरिया के पेड़ की गहरी छांव के नीचे मलखान के घोड़े बंधे रहे थे।

कहरवा :

बारम्बार समझा लये री इन राजा खों,
कही हमारी ने माने,

एक बेर गये ते पंपापुरी खों,
बाली बांद ने पाये री इन राजा खों,
कही हमारे नें मानों ....

एक बेर गयेते जनकपुरी खों,

सो धनुष टोर ने पाये री,
इन राजा खों, कहीं हमारी ने मानी।

(राजू पटेल, मेनपानी)

मन्दोदरी कहती हैं कि मैंने अपने पति को अनेकों बार समझाया लेकिन उन्होंने मेरा कहना कभी भी नहीं माना और उसका यह परिणाम हुआ कि आज उनका सर्वनाश हो गया।

वे एक समय पम्पापुर को गये थे वहां पर वाली को बांधकर लाने हेतु गये थे लेकिन उल्टा ही हुआ। खुद वाली ने उन्हें छै मास तक अपनी कांख में दबाकर रखा, उसके पश्चात् वे अपना सिर लटकाये हुए आ गये। एक बार वे सीता स्वयंवर हेतु जनकपुर गये, वहां पर शिवजी का धनुष भी नहीं तोड़ पाये। वहां से निराश होकर लौटना पड़ा। फिर सीताजी का अपहरण किया, उस समय भी मैंने समझाया था लेकिन मेरी न मानी, तो परिणाम यह हुआ कि सारा राक्षस कुल, घर, परिवार, स्वयं सब मारे गये।

कैसे पलंग चढ़ जाऊं राजा डर लागे तुमारे

कोहे के पलका बने, पलका बने प्यारे,
काहो लागै बुनाव, राजा लागे ....

तों चंदन के पलका बने, पलका बने प्यारे,
रेशम लागे बुनाव, राजा डर लागे ....

——00——

मोरे मनाय नें माने सखी री मोरे सैंया रिसानें।

व्यारी खों जगा जगा हारी, प्रीतम कर रये बहाने, मोरे मनाय ......
दार भात उर धर दई फुलकियां, एकऊ कोर नें खानें, मोरे मनाय ......

कहत गाकरें काय नें बनाई, बैठे हैं भरता के लाने, मोरे मनाय ....
मना मना कैं हार गई मैं, भौंरा से भन्नाने। मोरे मनाय ....

——00——

अंगना में ठांड़ी चार गुंईयां, बता रई कीके कैसे सैंया।

पैली कहै मोरे शंकर भोला सें,
लिपटी है नाग ततंईयां, बता रई ....

दूजी कहै मोरे राम लखन से,
खेलत है तीन धनईयां, बता रई ....

तीजी कहै मोरे भौतऊ प्यारे,
अंगना में लेत बलैंया, बता रई ....

चौथी कहे मोरे भौतऊ बुरय हैं,
मारत हैं चार पनईयां, बता रई ....

——00——

वन बिलवा सौ हेरै हमसे मुखई नें बोलें,

मोरे मायके से आये सकरांत के लडुआ,
बैठो कैंथ से फोरैं, हमसे मुखई ....

मोरे मायके से आये गूजा पपरिये,
नई करवी सी टोरें, हमसे मुखई ....

मोरे मायके से आऔ सतुआ,
बैठो नांद में धीरे, हमसे मुखई ....

(राई दल प्रमुख : अनंत पाल सिंह, खजुराहो)

चौकड़िया फागें :—

बुन्देलखण्ड में ईसुरी की फागें बहुत प्रसिद्ध हैं। छतरपुर, टीकमगढ़, झांसी, ललितपुर आदि जिलों में राई के साथ चौकड़िया फागें ही गाई जाती हैं। सर्वेक्षण में कुछ फागें प्राप्त हुई हैं।

हरगोविन्द कुशवाहा, टीकमगढ़ के अनुसार — ईसुरी प्रकृति एवं सौन्दर्य प्रेमी थे तथा राई के अत्याधिक शौकीन थे, उनके फाग साहित्य में दो बेडनियों का उल्लेख मिलाता है उन्हें रंगरेजन के नाम से लोग जानते थे। उनकी दो बहिनें थीं बड़ी बहिन

का नाम गंगिया, हमीरपुर के ग्राम पड़ुवा में तथा छोटी बहिन सुन्दरिया जो रामनगर (टीकमगढ़) में रहती थीं। ईसुरी इन दोनों बहिनों पर असक्त थे, जहां भी राई नृत्य होती थी तो ईसुरी को निमंत्रण देकर बुलाया जाता था। दोनों नर्तकी ईसुरी की फागें बड़े मधुर कंठ से गाती थीं।

यारी बेवकूपन सें करबौ,
होत सुगर कौ मरवौ।

बिना ज्ञान मूरख ना जों,
बनवो और विगरवौ।

अपुनयाई में बन हैं कैसें,
एकई गैर डिगरवौ।

जरिया कैसो जार ईसुरी,
मुसकिल परे निनरवौ।

(बृजेश चक्रवर्ती, धर्माश्री सागर)

ईसुरी कहते हैं कि मूर्खों से मैत्री का अर्थ है बुधजनों का मरण। बुद्धि के बगैर मूर्ख बनना और बिगाड़ना नहीं जानता। अपनेपन में यह भला कैसे संभव हो सकता है कि एक ही मार्ग पर चलें अर्थात् दोनों एक ही चाह को लेकर चलें। तब तो झरवेरी कैसा कांटों का जाल ऐसा फंसेगा कि सुलझना मुश्किल पड़ जाएगा।

देखत स्याम मांग पै मोये, गोला मुख पै गोये।

फन्दन फन्द फूल बेला की, बीचन बीच बिदोये,
बेंनी जलद चार कय केरत, तिवेंनी सें धोये।

अठत पराग अतर पटिया की, गये सरवोर निचोये,
ईसुर उतै प्राण की परवी, मन लै चली चितौये।

(राजकुमार लम्बरदार, सिदगुवां)

नायिका के केश–विन्यास का वर्णन करते हुए ईसुरी कहते हैं कि देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि श्याम मांग पर मोहित है अथवा श्याम नायिका की मांग पर मोहित हैं। गोलाकार मुख मण्डल पर जो गुंथित हैं। बेला–पुष्प के फन्दे बीच–बीच में सजे हैं। वेंणी जलधारा सी लहराती हुई केलि कर रही है। त्रिवेणी में धोए हुए हैं। अलकावलि से पराग–इत्र की खुशबू जिसमें केश निचौड़े गए हैं। कवि कहता है कि वहां प्रयाग स्नान का पर्व हो गया और मेरा मन एवं चित लिए जा रही है अर्थात् आकर्षित कर रही है।

पग में लगत महाउर भारी,
अत कोमल है प्यारी।

आद रती को लांगा पैरें,
तिलकी औड़े सारी।

खस–खस की इक अंगिया तन मैं,
आदी कौन किनारी।

रती रती के बीच ईसुरी,
एक नायका ढारी।

सुकुमार नायिका का वर्णन करते हुए ईसरी कहते हैं कि – जिसके पैरों में महावर का बोझ भारी प्रतीत होता है, वह प्रिया अति सुकुमार एवं कोमल है। उसके लंहगे का वनज आधीरती है जिसे वह पहिने हुए हैं। तिलभर की हल्की सी साड़ी ओढ़े हुए है। खस–खस दाने के बराबर वनज की कुंचकी तन में है, उसकी भी आधी कोर–किनारी है। रत्ती–रत्ती के बीच एक नायिका ढाली गई है।

तिलकी परन तिलन सें हलकी,
बांय गाल पै झलकी।

मानौ चुई चांद के ऊपर,
बुंदकी जमना जल की।

मानों फूल गुलाब के ऊपर,
उड़ बैठन भई अलकी।

के गोविन्द गुराई दै कै,
बैठ गये कल छलकी।

जी में लगी ईसुरी जी के,
दिल के दाब अतल की।

(प्रकाश यादव, मेनपानी)

ईसुरी नायिका के कपोल पर अंकित तिल देखकर कहते हैं कि – तिल की अंकन तिल से भी हल्की है जो बांये कपोल पर झलक दे रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चन्द्रमा के ऊपर यमुना जल की एक बंद चू गई हो अथवा मानो गुलाब के फूल पर भंवरा उठ–बैठ रहा हो या फिर स्वयं गोविन्द जी ही मुधरता के साथ स्वयं छल पूर्वक जा बैठे हों। जिस के जी पर बीच रही है उसके तो ह्रदय में अनल का भार समा गया है।

बूंदा मनकौ हरन तुमारौ,
जो लयें लेत हमारौ।

बनौ रात घूंट के भीतर,
करै रात उजियारौ।

अच्छे रंग धरे कारीगर,
लाल, हरीरो, कारौ।

ईसुर ऐसें डसें लेत है,
जैसे नांग लफारौ।

नायिका के मस्तक का बूंदा देख ईसुरी कहते हैं कि – मन हर लेने वाला तुम्हारा यह बूंदा मेरे प्राण लिये ले रहा है। घूंघट के अन्दर रहता हुआ वह प्रकाश बिखेर रहा है। कारीगर ने इसमें रंग ही इतने सुन्दर लाल, हरा, श्याम भर दिये हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक ऐसे डस रहा है जैसे लहराता लपलपाता काला नाग डसता है।

नैना परदेसी सें लरकें,
भऐ बरवाद बिगर कैं।

नैनां मोरे सूर सिपाही,
कवऊं न हारे लरकें।

जे नैना बारे सें पाले,
काजर रेखैं भरकें।

ईसुर भींज गई नई सारी,
खोबन अंसुआ ढरकें।

(हरगोविन्द कुशवाहा, टीकमगढ़)

ईसुरी कहते हैं कि नयन परदेशी से लड़ गए हैं अतः बिगड़कर बरवाद हो गए हैं। नैंन मेरे शूर–सिपाही हैं, जो लड़ जाने पर कभी हार नहीं मानते। इन नयनों को काजल की रेखा भर–भर कर बाल्यकाल से पोषित किया गया है। कवि कहता है कि नई साड़ी भीग गई है क्योंकि चुल्लूभर आंसू बह गए हैं।

राई नृत्यगीत में धार्मिक पक्ष :–

- *दुर्गा रहियो सहाय, तोरे भरोसे कंगन बांधे।*
- *मोरी मैया अबार, इनकी ओली भरो झामर बांध हैं।*
- *शंकर भोलानाथ, परबत पै बगिया लगाई रे।*
- *भज ले सीताराम, तुलसी की माला लै ले हाथ में।*
- *वस में कर लये राम, जानें कौन से तप कर लये।*
- *राम रंग में रंगे, सीता रंगी रे हरदी में।*
- *रथ ठांड़े बैठे करो, भैया भरत मिलबे आये।*
- *रथ पै बैठे भगवान, रेशम के डोरा लटक रये।*
- *केवट जोरे हाथ, तुम से नें लैहें उतराई।*

(झुन्नी अहिरवार, खजराहो)

- *धोखा हो गओ रे, सकती लगी लछमन खों।*
- *व्याकुल हो रओ राम, सकती लगे से लछमन खों।*

- *भुनसारे ने होंय, जल्दी जगा ले लछमन खों।*
- *मोरे वीर हनुमान, लछमन के प्रान बचा ले।*
- *धरती हल–हल जाय, अंगद को पांव हले नें।*
- *ठांड़े लछमन राम, बगिया में केर तरे ठांड़े।*
- *निसचर छोड़े प्रान, देखे जब सेंदुरिया बाने।*
- *सिया हरे लयें जाय, ऐसों मैंने राजा नें देखौ।*
- *करिया पर गये स्याम, जब से नाग नांथे हैं।*
- *अरसी कैसे फूल, स्यामले बरन हैं भगवान् के।*
- *तनक दही के लाने, स्याम ने मटकी फोर डारी।*
- *भौंरा हो रेय स्याम, बेला कली राधा हो रई।*

(रामलाल, सूरजपुरा गढ़ीमलारा)

विविध विषय संबंधी राई गीत :–

- *काजर कोर पै लगे, नें मानों ऐना में देख लो।*
- *काजर वारे नैन, मुरर–मुरर जादू डार गये।*
- *कैसो करिये राम, जे मन मानत नैंया।*
- *का बन गये कसूर, वारे में विधवा करी रे।*
- *कैसी खा गये मरोर, द्वारे से निकर गये बोले नें।*
- *कोऊ कां जाने रे, कौना की कौन से लगी है।*
- *काजर देती दो बेर, जो मोरे राजा घरे होते।*
- *कोऊ आवे नें जाये, मोरे सड़कियों पै बंगला।*
- *का बन गओ कसूर, पकर बुलाई थाने में।*
- *कजरी वन को शेर, गोरी खों देख डराय रे।*

(दीनानाथ दुबे, बड़ी देवरी)

- *खोले नें किवार, भीतर कोहलिया–सी बोले।*
- *गोरी तोरे नैन, जेखों लगे बोई जाने।*
- *गोरी ककरा नें मार, हम तो गली के गैलहारे।*

- *गोरी घुंघटा नें घाल, परहे काम नैनों से।*
- *धुन हो गये शरीर, जब से बलम जोगी हो गये।*
- *घरक के गाड़ी–बैल, पैदल निंगा दई बैरी ने।*
- *घर में दो–दो नार, राजा बिड़नियां खों हरसे।*
- *सबरे मर जायें, यार नें मरे बैला काऊ के।*
- *घर के थानेदार, अब डर नैंया मोय काऊ के।*
- *चन्द्रापुर की पठार, लूट लई गुलबिया गोदनसींग ने।*
- *चकरी हो रये नैन, किन–किन पै डारे नजरिया।*
- *चलियो अपनी चाल, नैंना बंदोवस में राखियो।*
- *जिन मारों गुलेल, आफत की मारी चिरईया।*
- *जी के रे कठोर, तनकई दया रे आई नें।*
- *जीरा परबस फंसे, मोती चुनत के जे हंसा।*

(हीरालाल अहिरवार, पृथ्वीपुर टीकमगढ़)

राई गीत (श्रृंगार परक) :–

- *वो तो उंसइया अजब बनी रहे, ओके ग्राहक कइयक फिरें।*
- *सखी सांची बताओ, घर हो संदेसे के आ हो।*
- *कोऊ जाने नें, तनकई इसारे में आ जा।*
- *फरिया उड़–उड़ जायें, चल रये झकोरा बैहर के।*
- *तनकई से मिले, तनकई बड़े होते राजा।*
- *जानी नंईयां यार, ये काया की कौन गत हुइये।*

(देवनारायण तिवारी, रहली)

- *टेड़ी हो गइ मांग, गालों पै बह रये कजलवा।*
- *राखो सबके मान, एकई की होकें नें रईयो।*
- *कोऊ जाने नें यार, तनकई इशारे में दय जा।*
- *फिर के मिलियो यार, आये ने मजा पहली बेर में।*
- *बरसे घनघोर, चोली नें भींजी तन भींज गये।*

- *दो के बीच में परे, कौन तरपे ले लयें करोंटा।*
- *कोऊ का जाने यार, जेखों लगी रे बोई जाने।*
- *कम्मर टूटी जाय, छोड़ दे करहैया जीरा जान दे।*
- *करहा टूटे जाय, राजा रे दरद जाने नें।*
- *कच्चे अनार लाल दानें, राजा रस लै के नें जानें।*
- *कनहर कैसी डार, जादा नें झुकइयो मोरे राजा।*
- *कैसे पलंग चढ़ जाऊं रे, बिछिया दे रये टकोरा।*
- *कहियो समझाय, इते जवानी नें जोश जनाय।*
- *जेठी जल–जल जाय, लुहरी के हो रये बिछौना।*
- *जियरा धीर नें धरैं, चोली के बंद टूटे जायं रे।*
- *जे की पतरी है नार, ओई के मजा है सोबे के।*
- *तुमखों जवानी की मरोर, हमखों मरोर जोवन की।*
- *तुम पै लाखों मरें, तुम नें मरी बेला काऊ पै।*
- *तलफी सारी रैन, दो रस बुंदियों के लानें।*

(मुल्ले अहिरवार, मेंदवारा)

राई में प्रयुक्त वाद्य –

मृदंग, ढ़ोलक, टिमकी, ढ़पला, बांसुरी, अलगोजा, तारें (मजीरा), झूला, रमतूला, आदि होते हैं।

मृदंग : भरताचार्य ने मिट्टी से निर्मित तथा दोनों ओर से चमड़े से मढ़े खोखले ढ़ॉचे वाले वाद्य को मृदंग कहा है यह चतुर्मुखी वाद्य था, जिसके वर्तमान तबले में समान तीन भाग थे। हरी तक्याकृति, क्षेतिज रूप में लिटाकर बजाया जाने वाला ''द्विमुखी'' आंकिक यवाकृति दोनों मुख समान किन्तु मध्यभाग उठा हुआ, केवल एक ओर वादित खड़ा वाद्य ऊर्ध्वक गोपुच्छाकृति – दोनों मुख असमान तथा मध्य भाग उठा हुआ केवल एक ओर वादित खड़ा वाद्य आलिंग्यक। किन्तु विद्वानों ने भरतोक्त मृदंग के स्वरूप को लेकर पर्याप्त मतभेद हैं।

प्राचीन ग्रंथों में मृदंग को पुष्कर वाद्य संज्ञा से अभिहित किया गया है। बुन्देलखण्ड में वाद्यों में मृदंग सर्वोपरि है। मृदंग का पिण्ड बीजे, सागौन या आम की लकड़ी का बनाया जाता है। इसके विषय में कहा जाता है –

"आम बजे कै बीजों, तीजे में ने खीजो"

इसकी लम्बाई 2 फीट से 2½ फीट तक होती है। लकड़ी का दल आधे अंगुल का होता है। मृदंग का दाहिना मुख लगभग 14 अंगुल का तथा बायां 9 से 12 अंगुल का होता है। मध्य का मुख 16–18 अंगुल का होता है। इसे दोनों तरफ चमड़े से मढ़ा जाता है। चमड़े में दो परतें होतीं हैं जो कि किनारी से गोलाई में काट दी जाती है। घेरे में 16 से 24 छिद्र होते हैं। उन छिद्रों में रस्सी से दोनों ओर खीचकर दृढ़ता से बॉधा जाता है। रस्सी के चार–चार छोरों में लकड़ी के गुटके लगे होते हैं इनको खीचने से रस्सी का बंधन ताना जाता है तथा नीच खिसकाने से स्वर ऊँचा बनता है। दोनों तरफ चमड़े में कलात्मक गजरे बने होते हैं। इनमें से होकर बद्धी या रस्सी निकलती है।

मृदंग के दाहिने मुख पर काला मशाला करीब 3'' व्यास के गोलाकर में लगा होता है, उसे स्याही कहते हैं। दूसरी तरफ आटा (गीला) लगाया जाता है। मृदंग में खुले जोरदार बोलों का प्रयोग होता है। जिन्हें पूरे हाथ के द्वारा निकाला जाता है। इस पर थाप भी की जाती है। मृदंग के आधार पर अन्य ताल वाद्यों का निर्माण किया गया है।

मध्यकाल में इस वाद्य का बहुत विकास हुआ। बुन्देखण्ड में लगभग हर गायन में मृदंग–वादन होता है इसका सहवाद्य टिमकी है। यहॉ की लोक गाथाओं में –

जगदेव की गाथा, धॉदू की गाथा, सूरजगढ़, श्रवण, धर्मासावरी आदि में मृदंग प्रयुक्त होता है।

ढ़ोलक : ढ़ोलक की लोकप्रियता आदिकाल से आधुनिक कला तक भी वैसी ही बनी है। इस वाद्य को अगर लोक संगीत का प्राण करें तो अतिश्योक्ति न होगी। इसका प्रयोग बुन्देलखण्ड के प्रत्येक गीतों में आज भी देखा जा सकता है।

यह स्वतंत्र वाद्य है। आम, नीम, सागौन, बीजा आदि की लकड़ी की ढ़ोलक बनती है। यह भी डेढ़ से दो फुट की लम्बाई की बनी होती है। एक हिस्सा लगभग 7–8 इंच तथा दूसरा 8–9 इंच का होता है। बुन्देलखण्ड में प्रायः गुलाई की ढ़ोलक का कम प्रचलन है। बड़े वाले पुड़े में भीतर से मसाला लगाया जाता है। ढ़ोलक का उपयोग सभी तरह के गायन, नर्तन में किया जाता है। महिलायें भी इसे बजाती हैं।

ढोलक या ढोलकी बड़े ढोल का लघु रूप है। लोकजीवन में चाहे माता पूजन हो, चाहे दादरे, सोहरे होना हों या जुगिया फिरना हो या बधाये, बन्ना–बन्नी के कीत हों या लोक संस्कारों अन्य अवसर हों, ढोलक को जरूर बजाया गया है। उक्त अवसरों पर मातायें, बहनें ही बजा लेती हैं। ढ़ोलक में राग–रागनियां भी लोक संगीत में बजाई जाती हैं। सामान्य रूप से आम, दुद्धी, सेजौ की लकड़ी से ढ़ोलक बनती है। दोनों तरफ चमड़ा मढ़ा दिया जाता है, जिसे पुरा कहते हैं। दोनों ओर के स्वर पृथक–पृथक बनाये जाते हैं। चोटी, गुमकी, ताल से ढ़ोलक की मोहक ध्वनि मर्मज्ञों द्वारा बजाई जाती है। इसे डंका से भी नट लोग बजाते हैं।

नगड़िया / टिमकी : टिमकी नारंगी के आकार की अर्धवृत्त नुमा मिट्टी की बनी होती है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता है। चमड़े के चारों ओर गजरा बना होता है इनसे पतली बट्टियॉ लगाकर टिमकी का कलात्मक बुनाव होता है। टिमकी को दो छोटी लकड़ियों से बजाया जाता है। यह वाद्य मृदंग–ढ़ोलक का सहवाद्य है। उसे प्रायः सभी तरह के लोकगीतों में बजाया जाता है। बजाने से पूर्व इसे अच्छी तरह से धूप में रखकर सेका जाता है। यह मृदंग की सहचरी है। इसे कमर में बॉधकर सामने की ओर लटकाकर बजाया जाता है।

ढ़पला : ढ़पला लकड़ी का षठकोणीय वाद्य है। लकड़ी की लगभग 3–4 इंच चौड़ी पट्टियों को जोड़कर इसे बनाया जाता है। इसके ऊपर बकरे की खाल मढ़ी होती है, पीछे की तरफ पतली वद्धियों से बुनाव किया जाता है, इन्हें सरदें कहते हैं। सरदों के अंत में गोला छल्ला जो कि चमड़े का बना होता है उससे सरदें कसी होती है। ढ़पले को पतली खपच्ची तथा डंडे से बजाया जाता है।

अलगोजा : अलगोजा के नाम से किसी सुषिर वाद्य का वर्णन प्राचीन शास्त्रों में नहीं मिलता और न ही इससे मिलते–जुलते स्वरूप वाले वाद्य का उल्लेख हुआ है, किन्तु वर्तमान में पंजाब, बुन्देलखण्ड और राजस्थान में इस वाद्य का प्रचलन है। अलगोजा समान दो छोटी व सीधी बॉसुरियॉ होती हैं जो ऊपर की ओर नर्सल की रीड़ से जुड़ी होती हैं। इस वाद्य का स्वर बहुत ऊँचा होता है। प्रत्येक वंशी में छः या सात स्वर रन्ध्र होते हैं। प्रत्येक वंशी पर तीन–तीन अंगुलियॉ रखकर दोनों हाथों से इसका वादन किया जाता है। दो खड़ी बॉसुरी जो एक स्वर की होती है, अलगोजा कहलाते हैं। इन्हें एक साथ बजाया जाता है। अलगोजा लोकगायन का प्रमुख वाद्य है।

रमतूला : रमतूला तॉबे का फूकवाद्य है। अंग्रेजी के एस के आकार का बना होता है। यह वाद्य खोखला होता है जो दो भागों में विभक्त होता है। इसे बजाने की तरफ पतला हिस्सा होता है आगे यह चौड़ा होता जाता है। इसे रणतूर्य या रणसिंगा भी कहते हैं। रमतूला सुषिर वाद्य है। प्राचीन काल में रणभूमि में युद्ध आरम्भ के समय इसे बजाया जाता था। वर्तमान में इसे वैवाहिक मंगलिक अवसरों पर तथा नृत्यों में प्रयुक्त किया जाता है। रमतूला को ढ़पले के साथ बजाया जाता है।

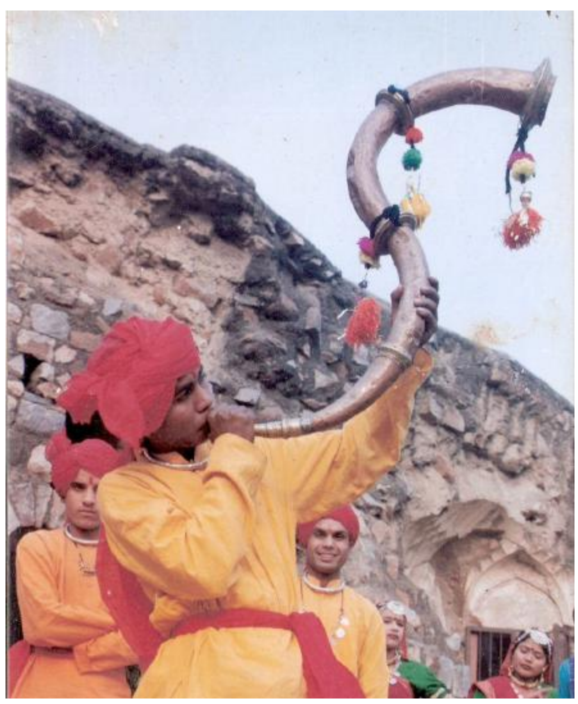

रमतूला वादन

***

बुन्देली लोकनृत्य राई, स्वांग (लोकनाट्य)

स्वांग अतिप्राचीन प्रदर्शनकारी कला है। लोक नाट्यों के इतिहास में स्वांग नाट्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। स्वांग हिन्दी बोलियों के लोकनाट्यों में सर्व प्राचीन लोकनाट्य है। समाज के इन बदलते रूपों में स्वांग जैसे छोटे नाट्य रूप ही सक्रिय रहे हैं, यह वजह है कि स्वांग की अवधारणा केवल बुन्देलखण्ड में ही नहीं अन्य अंचलों में भी प्राप्त होती है।

स्वांग में जीवन की अनुकृति और उसका हास्य व्यंग्य प्रसूत रूप में ही केन्द्रित है। यह जीवन के सहज अनुकरण का अवबोधन देने वाली विधा है। स्वांग मूलतः नकल है। नकल हास्य और व्यंग्य की मनोरम रचना है। बुन्देलखण्ड में स्वांग के सामान्तर इस विधा के लिए नकल शब्द भी प्राप्त होता है और इसके प्रस्तुतिकरण को नकल उतारना भी कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में स्वांग को जीवन के अनेक प्रसंगों पर प्रस्तुत किया जाता है। यह गीत नृत्य के बीच में भी प्रस्तुत होता है और स्वतंत्र रूप से भी इसकी प्रस्तुति होती है। गीतनृत्य के मध्य राई, कांड़रा, ढिमरयाई और फागों में इसे दृश्य काव्य में मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किया जाता है। इस आधार पर इनका नामकरण किया जाता है।

बुन्देली लोकनाट्य नाई का स्वांग

होली स्वांग, स्त्रियों के स्वांग, नवरात्री के स्वांग, त्यौहारों के स्वांग, बहुरूपियों के स्वांग, विवाह उत्सवों के स्वांग सामान्यतः राई और विवाहोत्सव के स्वांग का विस्तार इस अंचल के कौने–कौने में है।

मध्यकालीन बुन्देलखण्ड में रियासतें ही थीं। कुछ मुगलों के अधीन और कुछ स्वतंत्र। सामंतवाद और दरवारीपन दोनों में था, मूलतः राई लोकनृत्य का प्रचलन अधिक लोकप्रिय हुआ और भोगलिप्तु सामंतों तथा रसिक जनता ने उसे बहुत प्रश्रय दिया। मनोविनोद और चुहलबाजी के लिए विदूषक जैसे पात्र उससे जुड़ गए। इस प्रकार नृत्य परक लोकनाट्य में परिणत हो गया। विदेशी संस्कृति की प्रतिक्रिया बौद्धिक मस्तिष्क से लोकचेतना में आई और स्वांग लोकनाट्य में व्यंगय प्रधान होकर अभिव्यक्त हुई।

स्वांग सांगीत, भगत और नौटंकी से भिन्न लोकनाट्य है। बुन्देली स्वांग का उल्लेख 'छताई कथा' (1516–26 ई.) में नट–नाटक के रूप में आता है। बुन्देली स्वांग की मुख्य प्रवृत्ति व्यंग्य प्रधान है और उनमें व्यंग्य के सभी रूप सन्निहित हैं। इसलिए उन्हें हास्यपरक, उपहासपरक, विरोधमूलक, व्यंग्यप्रधान, व्यक्तिपरक कटूक्तिपरक और विनोदपरक में बांटा जाता है। महोबा, राठ, उबोरा और अनेक स्थानों में आज भी यह स्वांग बुन्देली लोकगीतों के साथ कहीं औपचारिक और कहीं रूचिपूर्वक अभिजीत होता है। स्वांग में इतना लचीलापन है कि वह परम्परागत होते हुए भी आधुनिक सोच को बखूबी समेट लेता है।

बुन्देली लोकनाटय नाऊ का स्वांग

बुन्देली स्वांगों ने अपने विकास के हर चरण में नये विषय और नयी चेतना अपनायी है। ये स्वांग राई नृत्य के बीच में बेड़नी (नर्तकी) एवं सौबत को विराम देने के लिए किये जाते हैं। ये अभिनय प्रधान होते हैं, अंत में गीत और नृत्य उसमें जुड़ जाते हैं। स्वांग अपनी अभिनय मूलकता और यथार्थपरक व्यंग्यात्मकता के आधार पर विशुद्ध स्वांग की प्रतिष्ठा रखते हैं। स्वांग सभी लोकनाट्यों में अपने कुछ खास स्वभाव और गुणों के कारण अधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए।

व्यापक रूप से देखों तो स्वांग का अर्थ है – रूप धरना, वेष बनाना, नकल करना, ढ़ोंग रचना, तमाशा करना आदि। स्वांगों की मुख्य विषयवस्तु सामाजिक जीवन और मनोरंजन है। उनमें जीवन की यथार्थपरक और वास्तविक अनुभूतियों का प्रतिबिम्वन हुआ है। इनके संवाद छोटे, सरल और सरस होते हैं। इनमें गद्य और पद्य को समान महत्व मिला है।

''पजवाले कुलार, गांव में लो गढ़िया आ गये''

दर्शकों में बौद्धिक चमत्कृति के साथ रसानुभूति की उपलब्धि होती है। इनकी विषय–वस्तु में लोक से जुड़ने की अपार क्षमता होती है।

***

साक्षात्कारों की सूची :–

1. श्रीमति जमना देवी उम्र 56 वर्ष, मउरानीपुर, जिला झांसी (उ.प्र.)
2. श्रीमति अरूणा चौबे उम्र 55 वर्ष, गोपालगंज सागर (म.प्र.)
3. श्रीमति गिरिजादेवी मिश्रा उम्र 62 वर्ष, बीना, जिला सागर (म.प्र.)
4. श्रीमति मुन्नीदेवी उम्र 42 वर्ष, मेंदवारा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)
5. श्रीमति प्रभा गोस्वामी उम्र 45 वर्ष, विलायतकलॉ, उमरिया (म.प्र.)
6. श्रीमति आशा देवी उम्र 35 वर्ष, उमरिया (म.प्र.)
7. अयोध्या प्रसाद कुमुद उम्र 62 वर्ष, उरई, जिला झांसी (उ.प्र.)
8. डॉ. रामगोपाल दुबे उम्र 68 वर्ष, मउरानीपुर, जिला झांसी (उ.प्र.)
9. श्रीमति रामरानी चौरसिया उम्र 52 वर्ष, लौंड़ी, जिला महोबा (उ.प्र.)
10. श्रीमति उर्मिला पाण्डे उम्र 49 वर्ष, छतरपुर (म.प्र.)
11. श्रीमति सुनतीबाई अहिरवार उम्र 46 वर्ष, खजुराहो (म.प्र.)
12. श्रीमति संतोषरानी उम्र 42 वर्ष, हरदौट, जिला ललितपुर (उ.प्र.)
13. श्रीमति मंजूलता सेन, सागर
14. श्रीमति रामकली देवी, सागर
15. मीरादेवी, बीना

संदर्भ सूची

1. मध्यप्रदेश के लोकनृत्य, बसंत निर्गुण
2. गुप्त डा. नर्मदा प्रसाद : आल्हाखण्ड
3. चौमासा अंक 32, 33, 48, 49, 63 आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल
4. गुप्त डा. नर्मदा प्रसाद : बुन्देली संस्कृति
5. गुप्त डा. नर्मदा प्रसाद : बुन्देली संस्कृति और साहित्य
6. गुप्त डा. नर्मदा प्रसाद : बुन्देली लोक साहित्य, परम्परा और विश्वास
7. वापना डा. शकुनतला : राजस्थान के लोकनृत्य
8. बुन्देली दर्शन पत्रिका, दमोह
9. ईसुरी अंक 16 : डा. एच.एस. गौर यू.टी.डी., सागर – हिन्दी विभाग
10. तिवारी डा. बल्भद्र : बुन्देली लोककाव्य परम्परा
11. तिवारी डा. सुधीर : बुन्देली लोकनृत्य गीतों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति